



हरे कृष्ण

श्रीमद् भगवत् गीता

अध्याय 6

॥ ध्यानयोग ॥

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥६.१॥

श्रीभगवान् ने कहा – जो पुरुष अपने कर्मफल के प्रति अनासक्त है और जो अपने कर्तव्य का पालन करता है, वही संन्यासी और असली योगी है । वह नहीं, जो न तो अग्नि जलाता है और न कर्म करता है ।

The Blessed Lord said: One who is unattached to the fruits of his work and who works as he is obligated is in the renounced order of life, and he is the true mystic: not he who lights no fire and performs no work.



इस अध्याय में भगवान् बताते हैं कि अष्टांगयोग पद्धति मन तथा इन्द्रियों को वश में करने का साधन है। किन्तु इस कलियुग में सामान्य जनता के लिए इसे सम्पन्न कर पाना अत्यन्त कठिन है। यद्यपि इस अध्याय में अष्टांगयोग पद्धति की संस्तुति की गई है, किन्तु भगवान् बल देते हैं कि कर्मयोग या कृष्णभावनामृत में कर्म करना इससे श्रेष्ठ है। इस संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने परिवार के पालनार्थ तथा अपनी सामग्री के रक्षार्थ कर्म करता है, किन्तु कोई भी मनुष्य बिना किसी स्वार्थ, किसी व्यक्तिगत तृप्ति के, चाहे वह तृप्ति आत्मकेन्द्रित हो या व्यापक, कर्म नहीं करता। पूर्णता की कसौटी है – कृष्णभावनामृत में कर्म करना, कर्म के फलों का भोग करने के उद्देश्य से नहीं। कृष्णभावनामृत में कर्म करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है, क्योंकि सभी लोग परमेश्वर के अंश हैं। शरीर के अंग पूरे शरीर के लिए कार्य करते हैं। शरीर के अंग अपनी तृप्ति के लिए नहीं, अपितु पूरे शरीर की तुष्टि के लिए कार्य करते हैं। इसी प्रकार जो जीव अपनी तुष्टि के लिए नहीं, अपितु परब्रह्म की तुष्टि के लिए कार्य करता है, वही पूर्ण सन्न्यासी या पूर्ण योगी है। कभी-कभी सन्न्यासी सोचते हैं कि उन्हें सारे कार्यों से मुक्ति मिल गई, अतः वे अग्निहोत्र यज्ञ करना बन्द कर देते हैं, लेकिन वस्तुतः वे स्वार्थी हैं क्योंकि उनका लक्ष्य निराकार ब्रह्म से तादात्मय स्थापित करना होता है। ऐसी इच्छा भौतिक इच्छा से तो श्रेष्ठ है, किन्तु यह स्वार्थ से रहित नहीं होती। इसी प्रकार जो योगी समस्त कर्म बन्द करके अर्धनिमीलित नेत्रों से योगाभ्यास करता है, वह भी आत्मतुष्टि की इच्छा से पूरित होता है। किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को कभी भी आत्मतुष्टि की इच्छा नहीं रहती। उसका एकमात्र लक्ष्य कृष्ण को प्रसन्न करना रहता है, अतः वह पूर्ण सन्न्यासी या पूर्णयोगी होता है। त्याग के सर्वोच्च प्रतीक भगवान् चैतन्य प्रार्थना करते हैं – न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये। मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥ “हे सर्वशक्तिमान् प्रभु! मुझे न तो धन-संग्रह की कामना है, न मैं सुन्दर स्त्रियों के साथ रमण करने का अभिलाषी हूँ, न ही मुझे अनुयायियों की कामना है। मैं तो जन्म-जन्मान्तर आपकी प्रेमाभक्ति की अहैतुकी कृपा का ही अभिलाषी हूँ।”

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव |
न ह्यसंन्यस्तसकल्पो योगी भवति कश्चन || 6.2 ||



हे पाण्डुपुत्र ! जिसे संन्यास कहते हैं उसे ही तुम योग अर्थात् परब्रह्म से युक्त होना जानो क्योंकि इन्द्रियतृप्ति के लिए इच्छा को त्यागे बिना कोई कभी योगी नहीं हो सकता ।

What is called renunciation is the same as yoga, or linking oneself with the Supreme, for no one can become a yogī unless he renounces the desire for sense gratification.



वास्तविक संन्यास-योग या भक्ति का अर्थ है कि जीवात्मा अपनी स्वाभाविक स्थिति को जाने और तदानुसार कर्म करे । जीवात्मा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता । वह परमेश्वर की तटस्था शक्ति है । जब वह माया के वशीभूत होता है तो वह बद्ध हो जाता है, किन्तु जब वह कृष्णभावनाभावित रहता है अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति में सजग रहता है तो वह अपनी सहज स्थिति में होता है । इस प्रकार जब मनुष्य पूर्णज्ञान में होता है तो वह समस्त इन्द्रियतृप्ति को त्याग देता है अर्थात् समस्त इन्द्रियतृप्ति के कार्यकलापों का परित्याग कर देता है । इसका अभ्यास योगी करते हैं जो इन्द्रियों को भौतिक आसक्ति से रोकते हैं । किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को तो ऐसी किसी भी वस्तु में अपनी इन्द्रिय लगाने का अवसर ही नहीं मिलता जो कृष्ण के निमित्त न हो । फलतः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति संन्यासी तथा योगी साथ-साथ होता है । ज्ञान तथा इन्द्रियनिग्रह योग के ये दोनों प्रयोजन कृष्णभावनामृत द्वारा स्वतः पूरे हो जाते हैं । यदि मनुष्य स्वार्थ का त्याग नहीं कर पाता तो ज्ञान तथा योग व्यर्थ रहते हैं । जीवात्मा का मुख्य ध्येय तो समस्त प्रकार की आत्मतृप्ति को त्यागकर परमेश्वर की तुष्टि करने के लिए तैयार रहना है । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति में किसी प्रकार की आत्मतृप्ति की इच्छा नहीं रहती । वह सदैव परमेश्वर की प्रसन्नता में लगा रहता है, अतः जिसे परमेश्वर के विषय में कुछ भी पता नहीं होता वही स्वार्थ पूर्ति में लगा रहता है क्योंकि कोई कभी निष्क्रिय नहीं रह सकता । कृष्णभावनामृत का अभ्यास करने से सारे कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हो जाते हैं ।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते । योगारुदस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते || 6.3 ||

अष्टांगयोग के नवसाधक के लिए कर्म साधन कहलाता है और
योगसिद्धि पुरुष के लिए समस्त भौतिक कार्यकलापों का परित्याग ही
साधन कहा जाता है ।

For one who is a neophyte in the eightfold yoga system,
work is said to be the means; and for one who has al-
ready attained to yoga, cessation of all material activities
is said to be the means.



परमेश्वर से युक्त होने की विधि योग कहलाती है। इसकी तुलना उस सीढ़ी से की जा सकती है जिससे सर्वोच्च आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त की जाती है। यह सीढ़ी जीव की अधम अवस्था से प्रारम्भ होकर अध्यात्मिक जीवन के पूर्ण आत्म-साक्षात्कार तक जाती है। विभिन्न चढ़ावों के अनुसार इस सीढ़ी के विभिन्न भाग भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं। किन्तु कुल मिलाकर यह पूरी सीढ़ी योग कहलाती है और इसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है – ज्ञानयोग, ध्यानयोग और भक्तियोग। सीढ़ी के प्रारम्भिक भाग को योगारुक्षु अवस्था और अन्तिम भाग को योगारुद्ध कहा जाता है। जहाँ तक अष्टांगयोग का सम्बन्ध है, विभिन्न यम-नियमों तथा आसनों (जो प्रायः शारीरिक मुद्राएँ ही हैं) के द्वारा ध्यान में प्रविष्ट होने के लिए आरम्भिक प्रयासों को सकाम कर्म माना जाता है। ऐसे कर्मों से पूर्ण मानसिक सन्तुलन प्राप्त होता है जिससे इन्द्रियाँ वश में होती हैं। जब मनुष्य पूर्ण ध्यान में सिद्धहस्त हो जाता है तो विचलित करने वाले समस्त मानसिक कार्य बन्द हुए माने जाते हैं। किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति प्रारम्भ से ही ध्यानावस्थित रहता है क्योंकि वह निरन्तर कृष्ण का चिन्तन करता है। इस प्रकार कृष्ण की सेवा में सतत व्यस्त रहने के करण उसके सारे भौतिक कार्यकलाप बन्द हुए माने जाते हैं।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसन्ध्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ 6.4 ॥



जब कोई पुरुष समस्त भौतिक इच्छाओं का त्यागा करके न तो
इन्द्रियतृप्ति के लिए कार्य करता है और न सकामकर्मों में प्रवृत्त होता
है तो वह योगारूढ कहलाता है ।

A person is said to have attained to yoga when, having renounced all material desires, he neither acts for sense gratification nor engages in fruitive activities.



जब मनुष्य भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में पूरी तरह लगा रहता है तो वह अपने आप में प्रसन्न रहता है और इस तरह वह इन्द्रियतृप्ति या सकामकर्म में प्रवृत्त नहीं होता | अन्यथा इन्द्रियतृप्ति में लगना ही पड़ता है, क्योंकि कर्म किए बिना कोई रह नहीं सकता | बिना कृष्णभावनामृत के मनुष्य सदैव स्वार्थ में तत्पर रहता है | किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही सब कुछ करता है, फलतः वह इन्द्रियतृप्ति से पूरी तरह विरक्त रहता है | जिसे ऐसी अनुभूति प्राप्त नहीं है उसे चाहिए कि भौतिक इच्छाओं से बचे रहने का वह यंत्रवत् प्रयास करे, तभी वह योग की सीढ़ी से ऊपर पहुँच सकता है |

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ 6.5 ॥



मनुष्य को चाहिए कि अपने मन की सहायता से अपना उद्धार करे और अपने को नीचे न गिरने दे । यह मन बद्धजीव का मित्र भी है और शत्रु भी ।

A man must elevate himself by his own mind, not degrade himself. The mind is the friend of the conditioned soul, and his enemy as well.



यहाँ पर तीन विचारणीय बातें हैं – कर्म (स्वधर्म), विकर्म तथा अकर्म | कर्म (स्वधर्म) वे कार्य हैं जिनका आदेश प्रकृति के गुणों के रूप में प्राप्त किया जाता है | अधिकारी की सम्मति के बिना किये गये कर्म विकर्म कहलाते हैं और अकर्म का अर्थ है – अपने कर्मों को न करना | भगवान् ने अर्जुन को उपदेश दिया कि वह निष्क्रिय न हो, अपितु फल के प्रति आसक्त हुए बिना अपना कर्म करे | कर्म फल के प्रति आसक्त रहने वाला भी कर्म का कारण है | इस तरह वह ऐसे कर्मफलों का भोक्ता होता है | जहाँ तक निर्धारित कर्मों का सम्बन्ध है वे तीन उपश्रेणियों के हो सकते हैं – यथा नित्यकर्म, आपात्कालीन कर्म तथा इच्छित कर्म | नित्यकर्म फल की इच्छा के बिना शास्त्रों के निर्देशानुसार सतोगण में रहकर किये जाते हैं | फल युक्त कर्म बन्धन के कारण बनते हैं, अतः ऐसे कर्म अशुभ हैं | हर व्यक्ति को अपने कर्म पर अधिकार है, किन्तु उसे फल से अनासक्त होकर कर्म करना चाहिए | ऐसे निष्काम कर्म निस्सन्देह मुक्ति पथ की ओर ले जाने वाले हैं | अतएव भगवान् ने अर्जुन को फलासक्ति रहित होकर कर्म (स्वधर्म) के रूप में युद्ध करने की आज्ञा दी | उसका युद्ध-विमुख होना आसक्ति का दूसरा पहलू है | ऐसी आसक्ति से कभी मुक्ति पथ की प्राप्ति नहीं हो पाती | आसक्ति चाहे स्वीकारत्मक हो या निषेधात्मक, वह बन्धन का कारण है | अकर्म पापमय है | अतः कर्तव्य के रूप में युद्ध करना ही अर्जुन के लिए मुक्ति का एकमात्र कल्याणकारी मार्ग था |

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ 6.6 ॥



जिसने मन को जीत लिया है उसके लिए मन सर्वश्रेष्ठ मित्र है, किन्तु जो ऐसा नहीं कर पाया इसके लिए मन सबसे बड़ा शत्रु बना रहेगा ।

For him who has conquered the mind, the mind is the best of friends; but for one who has failed to do so, his very mind will be the greatest enemy.



अष्टांगयोग के अभ्यास का प्रयोजन मन को वश में करना है, जिससे मानवीय लक्ष्य प्राप्त करने में वह मिल बना रहे। मन को वश में किये बिना योगाभ्यास करना मात्र समय को नष्ट करना है। जो अपने मन को वश में नहीं कर सकता, वह सतत अपने परम शत्रु के साथ निवास करता है और इस तरह उसका जीवन तथा लक्ष्य दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। जीव की स्वाभाविक स्थिति यह है कि वह अपने स्वामी की आङ्ग वाक का पालन करे। अतः जब तक मन अविजित शत्रु बना रहता है, तब तक मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की आङ्गओं का पालन करना होता है। किन्तु जब मन पर विजय प्राप्त हो जाती है, तो मनुष्य इच्छानुसार उस भगवान् की आङ्ग वाक का पालन करता है जो सबों के हृदय में परमात्मास्वरूप स्थित है। वास्तविक योगाभ्यास हृदय के भीतर परमात्मा से भेंट करना तथा उनकी आङ्ग वाक का पालन करना है। जो व्यक्ति साक्षात् कृष्णभावनामृत स्वीकार करता है वह भगवान् की आङ्ग वाक के प्रति स्वतः समर्पित हो जाता है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः । शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयो ॥ 6.7 ॥



जिसने मन को जीत लिया है, उसने पहले ही परमात्मा को प्राप्त कर लिया है, क्योंकि उसने शान्ति प्राप्त कर ली है । ऐसे पुरुष के लिए सुख-दुख, सर्दी-गर्मी एवं मान-अपमान एक से हैं ।

For one who has conquered the mind, the Supersoul is already reached, for he has attained tranquility. To such a man happiness and distress, heat and cold, honor and dishonor are all the same.



वस्तुतः प्रत्येक जीव उस भगवान् की आज्ञा का पालन करने के निमित्त आया है, जो जन-जन के हृदयों में परमात्मा-रूप में स्थित है | जब मन बहिरंगा माया द्वारा विपथ कर दिया जाता है तब मनुष्य भौतिक कार्यकलापों में उलझ जाता है | अतः ज्योंही मन किसी योगपद्धति द्वारा वश में आ जाता है त्योंही मनुष्य को लक्ष्य पर पहुँच हुआ मान लिया जाना चाहिए | मनुष्य को भगवद्-आज्ञा का पालन करना चाहिए | जब मनुष्य का मन परा-प्रकृति में स्थिर हो जाता है तो जीवात्मा के समक्ष भगवद्-आज्ञा पालन करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता | मन को किसी न किसी उच्च आदेश को मानकर उनका पालन करना होता है | मन को वश में करने से स्वतः ही परमात्मा के आदेश का पालन होता है | चूंकि कृष्णभावनाभावित होते ही यह दिव्य स्थिति प्राप्त हो जाती है, अतः भगवद्गुरु संसार के द्वन्द्वों, यथा सुख-दुख, सर्दी-गर्मी आदि से अप्रभावित रहता है | यह अवस्था व्यावहारिक समाधि या परमात्मा में तल्लीनता है |

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः । युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ 6.8 ॥



वह व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त तथा योगी कहलाता है जो अपने अर्जित ज्ञान तथा अनुभूति से पूर्णतया सन्तुष्ट रहता है । ऐसा व्यक्ति अध्यात्म को प्राप्त तथा जितेन्द्रिय कहलाता है । वह सभी वस्तुओं को – चाहे वे कंकड़ हों, पत्थर हों या कि सोना – एकसमान देखता है ।

A person is said to be established in self-realization and is called a yogī [or mystic] when he is fully satisfied by virtue of acquired knowledge and realization. Such a person is situated in transcendence and is self-controlled. He sees everything-whether it be pebbles, stones or gold-as the same.



परमसत्य की अनुभूति के बिना कोरा ज्ञान व्यर्थ होता है | भक्तिरसामृत सिन्धु में (१.२.२३४) कहा गया है - अतः
श्रीकृष्णनामादिण भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः | सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ||

“कोई भी व्यक्ति अपनी दूषित इन्द्रियों के द्वारा श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा उनकी लीलाओं की दिव्य प्रकृति को नहीं समझ सकता | भगवान् की दिव्य सेवा से पूरित होने पर ही कोई उनके दिव्य नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं को समझ सकता है |” यह भगवद्गीता कृष्णभावनामृत का विज्ञान है | माल संसारी विद्वता से कोई कृष्णभावनाभावित नहीं हो सकता | उसे विशुद्ध चेतना वाले का सान्निध्य प्राप्त होने का सौभाग्य मिलना चाहिए | कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को भगवत्कृपा से ज्ञान की अनुभूति होती है, क्योंकि वह विशुद्ध भक्ति से तुष्ट रहता है | अनुभूत ज्ञान से वह पूर्ण बनता है | आध्यात्मिक ज्ञान से मनुष्य अपने संकल्पों में दृढ़ रह सकता है, किन्तु माल शैक्षिक ज्ञान से वह बाह्य विरोधाभासों द्वारा मोहित और भ्रमित होता रहता है | केवल अनुभवी आत्मा ही आत्मसंयमी होता है, क्योंकि वह कृष्ण की शरण में जा चुका होता है | वह दिव्य होता है क्योंकि उसे संसारी विद्वता से कुछ लेना-देना नहीं रहता | उसके लिए संसारी विद्वता तथा मनोधर्म, जो अन्यों के लिए स्वर्ण के समान उत्तम होते हैं, कंकड़ों या पत्थरों से अधिक नहीं होते |

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ 6.9 ॥



एक व्यक्ति को तब और भी उन्नत कहा जाता है जब वह सभी ईमानदार शुभचिंतकों, मित्रों और शत्रुओं, ईर्ष्यालु, पवित्र, पापी और उदासीन और निष्पक्ष लोगों को समान मन से मानता है ।

A person is said to be still further advanced when he regards all-the honest well-wisher, friends and enemies, the envious, the pious, the sinner and those who are indifferent and impartial-with an equal mind.





योगी युज्जीत सततमात्मनं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ 6.10 ॥

एक पारलौकिकवादी को हमेशा अपने मन को सर्वोच्च आत्मा पर केंद्रित करने का प्रयास करना चाहिए; उसे एकांत स्थान पर अकेले रहना चाहिए और हमेशा अपने मन को ध्यान से नियंत्रित करना चाहिए। उसे इच्छाओं और स्वामित्व की भावनाओं से मुक्त होना चाहिए।

A transcendentalist should always try to concentrate his mind on the Supreme Self; he should live alone in a secluded place and should always carefully control his mind. He should be free from desires and feelings of possessiveness.



कृष्ण को ब्रह्म, परमात्मा और भगवान के सर्वोच्च व्यक्तित्व के रूप में विभिन्न अंशों में महसूस किया जाता है। कृष्ण भावनामृत का अर्थ है, संक्षेप में, हमेशा भगवान की दिव्य प्रेममयी सेवा में लगे रहना। लेकिन जो लोग अवैयक्तिक ब्रह्म या स्थानीय परमात्मा से जुड़े हैं, वे भी आंशिक रूप से कृष्णभावनाभावित हैं, क्योंकि अवैयक्तिक ब्रह्म कृष्ण की आध्यात्मिक किरण है और परमात्मा कृष्ण का सर्वव्यापी आंशिक विस्तार है। इस प्रकार निर्विशेषवादी और ध्यानी भी परोक्ष रूप से कृष्ण भावनाभावित हैं। एक सीधे कृष्ण भावनाभावित व्यक्ति सर्वोच्च पारलौकिक व्यक्ति है क्योंकि ऐसा भक्त जानता है कि ब्रह्म या परमात्मा का क्या अर्थ है। परम सत्य का उनका ज्ञान पूर्ण है, जबकि निर्विशेषवादी और ध्यान योगी अपूर्ण रूप से कृष्णभावनाभावित हैं।

फिर भी, इन सभी को इसके साथ निर्देश दिया जाता है कि वे लगातार अपने विशेष कार्यों में लगे रहें ताकि वे जल्द या बाद में उच्चतम पूर्णता तक पहुंच सकें। एक पारलौकिकवादी का पहला काम है मन को हमेशा कृष्ण पर रखना। व्यक्ति को हमेशा कृष्ण के बारे में सोचना चाहिए और उन्हें एक क्षण के लिए भी नहीं भूलना चाहिए। मन की सर्वोच्च पर एकाग्रता को समाधि या ट्रान्स कहा जाता है। मन को एकाग्र करने के लिए हमेशा एकांत में रहना चाहिए और बाहरी वस्तुओं से अशांति से बचना चाहिए। उसे अपनी प्राप्ति को प्रभावित करने वाली अनुकूल परिस्थितियों को स्वीकार करने और प्रतिकूल परिस्थितियों को अस्वीकार करने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। और, पूर्ण दृढ़ संकल्प में, उसे अनावश्यक भौतिक चीजों के लिए लालसा नहीं करनी चाहिए जो उसे स्वामित्व की भावनाओं से उलझाती हैं। इन सभी सिद्धियों और सावधानियों को पूरी तरह से निष्पादित किया जाता है जब कोई सीधे कृष्ण भावनामृत में होता है क्योंकि प्रत्यक्ष कृष्ण भावनामृत का अर्थ है आत्म-त्याग, जिसमें भौतिक अधिकार के लिए बहुत कम मौका है। श्रील रूप गोस्वामी कृष्ण भावनामृत को इस प्रकार चिह्नित करते हैं:

अनासक्तस्य विज्ञान यथारं उपयुज्ज्ञतंनिर्बिधः कृष्ण-संबंधे युक्तः वैराग्यं उच्यतेप्रपञ्चिकताया बुद्ध्य
हरि-संबंधि-वास्तुनामुमुक्षुभिं परित्यागो वैराग्य फाल्गु कात्याग्य ।

(भक्ति-रसामृत-सिंधु २.२५५-२५६)

"जब कोई किसी चीज में आसक्त नहीं होता है, लेकिन साथ ही साथ कृष्ण के संबंध में सब कुछ स्वीकार करता है, तो वह अधिकार से ऊपर स्थित होता है। दूसरी ओर, जो कृष्ण के साथ अपने संबंध के ज्ञान के बिना हर चीज को अस्वीकार कर देता है, वह अपने में पूर्ण नहीं है। त्याग ।"

एक कृष्ण भावनाभावित व्यक्ति अच्छी तरह जानता है कि सब कुछ कृष्ण का है, और इस प्रकार वह हमेशा व्यक्तिगत अधिकार की भावनाओं से मुक्त रहता है। जैसे, उसे अपने निजी खाते में किसी भी चीज़ के लिए कोई लालसा नहीं है। वह जानता है कि कैसे कृष्ण भावनामृत के पक्ष में चीजों को स्वीकार करना है और कृष्ण भावनामृत के प्रतिकूल चीजों को कैसे अस्वीकार करना है। वह हमेशा भौतिक चीजों से अलग रहता है क्योंकि वह हमेशा पारलौकिक होता है, और वह हमेशा अकेला रहता है, जिसका उन लोगों से कोई लेना-देना नहीं है जो कृष्ण भावनामृत में नहीं हैं। इसलिए कृष्ण भावनामृत व्यक्ति पूर्ण योगी है ।

श्रुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ 6.11॥



योगाभ्यास के लिए योगी एकान्त स्थान में जाकर भूमि पर कुशा बिछा दे और फिर उसे मृगछाला से ढके तथा ऊपर से मुलायम वस्त्र बिछा दे । आसन न तो बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा । यह पवित्र स्थान में स्थित हो

To practice yoga, one should go to a secluded place and should lay kuśa-grass on the ground and then cover it with a deerskin and a soft cloth. The seat should neither be too high nor too low and should be situated in a sacred place





ततैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविश्रुद्धये ॥ 6.12 ॥

योगी को चाहिए कि इस पर दृढ़तापूर्वक बैठ जाय और मन, इन्द्रियों तथा कर्मों को वश में करते हुए तथा मन को एक बिन्दु पर स्थित करके हृदय को शुद्ध करने के लिए योगाभ्यास करे ।

The yogī should then sit on it very firmly and should practice yoga by controlling the mind and the senses, purifying the heart and fixing the mind on one point.



पवित्र स्थान’ तीर्थस्थान का सूचक है। भारत में योगी तथा भक्त अपना घर त्याग कर प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, हृषिकेश तथा हरिद्वार जैसे पवित्र स्थानों में वास करते हैं और एकान्तस्थान में योगाभ्यास करते हैं, जहाँ यमुना तथा गंगा जैसी नदियाँ प्रवाहित होती हैं। किन्तु प्रायः ऐसा करना सबों के लिए, विशेषतया पाश्चात्यों के लिए, सम्भव नहीं है। बड़े-बड़े शहरों की तथाकथित योग-समितियाँ भले ही धन कमा लें, किन्तु वे योग के वास्तविक अभ्यास के लिए सर्वथा अनुपयुक्त होती हैं। जिसका मन विचलित है और जो आत्मसंयमी नहीं है, वह ध्यान का अभ्यास नहीं कर सकता। अतः बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है कि कलियुग (वर्तमान युग) में, जबकि लोग अल्पजीवी, आत्म-साक्षात्कार में मन्द, तथा चिन्ताओं से व्यग्र रहते हैं, भगवत्प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन है –

हरेनामं हरेनामं हरेनामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

“कलह और दम्भ के इस युग में मोक्ष का एकमात्र साधन भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना है। कोई दूसरा मार्ग नहीं है। कोई दूसरा मार्ग नहीं है। कोई दूसरा मार्ग नहीं है।”



समं कायशिरोग्रीवं धार्यन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ 6.13 ॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः ॥ 6.14 ॥

योगाभ्यास करने वाले को चाहिए कि वह अपने शरीर, गर्दन तथा सर को सीधा रखे और नाक के अगले सिरे पर हृष्टि लगाए । इस प्रकार वह अविचलित तथा दमित मन से, भयरहित, विषयीजीवन से पूर्णतया मुक्त होकर अपने हृदय में मेरा चिन्तन करे और मुझे हि अपना चरमलक्ष्य बनाए ।



जीवन का उद्देश्य कृष्ण को जानना है जो प्रत्येक जीव के हृदय में चतुर्भुज परमात्मा रूप में स्थित हैं। योगाभ्यास का प्रयोजन विष्णु के इसी अन्तर्यामी रूप की खोज करने तथा देखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अन्तर्यामी विष्णुमूर्ति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में निवास करने वाले कृष्ण का स्वांश रूप है। जो इस विष्णुमूर्ति की अनुभूति करने के अतिरिक्त किसी अन्य कपटयोग में लगा रहता है, वह निस्सन्देह अपने समय का अपव्यय करता है। कृष्ण ही जीवन के परम लक्ष्य है। हृदय के भीतर इस विष्णुमूर्ति की अनुभूति प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्यव्रत अनिवार्य है, अतः मनुष्य को चाहिए कि घर छोड़ दे और किसी एकान्त स्थान में बताई गई विधि से आसीन होकर रहे। नित्यप्रति घर में या अन्यल ऐथुन-भोग करते हुए और तथाकथित योग की कक्षा में जाने मात्र से कोई योगी नहीं हो जाता। उसे मन को संयमित करने का अभ्यास करना होता है और सभी प्रकार की इन्द्रियतृप्ति से, जिसमें मैथुन-जीवन मुख्य है, बचना होता है। महान ऋषि याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मचर्य के नियमों में बताया है –

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वतः मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

“सभी कालों में, सभी अवस्थाओं में तथा सभी स्थानों में मनसा वाचा कर्मणा मैथुन-भोग से पूर्णतया दूर रहने में सहायता करना ही ब्रह्मचर्यव्रत का लक्ष्य है।” मैथुन में प्रवृत्त रहकर योगाभ्यास नहीं किया जा सकता। इसीलिए बचपन से जब मैथुन का कोई ज्ञान भी नहीं होता ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाती है। पाँच वर्ष की आयु में बच्चों को गुरुकुल भेजा जाता है, जहाँ गुरु उन्हें ब्रह्मचारी बनने के दृढ़ नियमों की शिक्षा देता है। ऐसे अभ्यास के बिना किसी भी योग में उन्नति नहीं की जा सकती, चाहे वह ध्यान हो, या कि ज्ञान या भक्ति। किन्तु जो व्यक्ति विवाहित जीवन के विधि-विधानों का पालन करता है और अपनी हीपतनी से मैथुन-सम्बन्ध रखता है वह भी ब्रह्मचारी कहलाता है। ऐसे संयमशील गृहस्थ-ब्रह्मचारी को भक्ति सम्प्रदाय में स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु ज्ञान तथा ध्यान सम्प्रदाय वाले ऐसे गृहस्थ-ब्रह्मचारी को भी प्रवेश नहीं देते। उनके लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। भक्ति सम्प्रदाय में गृहस्थ-ब्रह्मचारी को संयमित मैथुन की अनुमति रहती है, क्योंकि भक्ति सम्प्रदाय इतना शक्तिशाली है कि भगवान् की सेवा में लगे रहने से वह स्वतः ही मैथुन का आकर्षण त्याग देता है।

भगवद्गीता में (२.५१) कहा गया है –

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्टा निवर्तते ॥

जहाँ अन्यों को विषयभोग से दूर रहने के लिए बाध्य किया जाता है वहीं भगवद्भक्त भगवद्रसास्वादन के कारण इन्द्रियतृप्ति से स्वतः विरक्त हो जाता है । भक्त को छोड़कर अन्य किसी को इस अनुपम रस का ज्ञान नहीं होता ।

विगत-भीः पूर्ण कृष्णभावनाभावित हुए बिना मनुष्य निर्भय नहीं हो सकता । बद्धजीव अपनी विकृत स्मृति अथवा कृष्ण के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध की विस्मृति के करण भयभीत रहता है । भागवतका (११.२.३७) कथन है – भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद् ईशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ही योग का पूर्ण अभ्यास कर सकता है और चँकि योगाभ्यास का चरम लक्ष्य अन्तःकरण में भगवान् का दर्शन पाना है, अतः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति पहले से ही समस्त योगियों से श्रेष्ठ होता है । यहाँ पर वर्णित योगविधि के नियम तथाकथित लोकप्रिय योग-समितियों से भिन्न हैं ।



युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ 6.15 ॥

इस प्रकार शरीर, मन तथा कर्म में निरन्तर संयम का अव्यास करते हुए संयमित मन वाले योगी को इस भौतिक अस्तित्व की समाप्ति पर भगवद्घाम की प्राप्ति होती है ।

Thus practicing control of the body, mind and activities, the mystic transcendentalist attains to the kingdom of God [or the abode of Krishna by cessation of material existence.



अब योगाभ्यास के चरम लक्ष्य का स्पष्टीकरण किया जा रहा है | योगाभ्यास किसी भौतिक सुविधा की प्राप्ति के लिए नहीं किया जाता, इसका उद्देश्य तो भौतिक संसार से विरक्ति प्राप्त करना है | जो कोई इसके द्वारा स्वास्थ्य-लाभ चाहता है या भौतिक सिद्धि प्राप्त करने का इच्छुक होता है वह भगवद्गीता के अनुसार योगी नहीं है | न ही भौतिक अस्तित्व की समाप्ति का अर्थ शून्य में प्रवेश है क्योंकि यह कपोलकल्पना है | भगवान् की सृष्टि में कहीं भी शून्य नहीं है | उलटे भौतिक अस्तित्व की समाप्ति से मनुष्य भगवद्गाम में प्रवेश करता है | भगवद्गीता में भगवद्गाम का भी स्पष्टीकरण किया गया है कि यह वह स्थान है जहाँ न सूर्य की आवश्यकता है, न चाँद या बिजली की | आध्यात्मिक राज्य के सारे लोक उसी प्रकार से स्वतः प्रकाशित हैं, जिस प्रकार सूर्य द्वारा यह भौतिक आकाश | वैसे तो भगवद्गाम सर्वत है, किन्तु चिन्मयव्योम तथा उसके लोकों को ही परमधाम कहा जाता है | एक पूर्णयोगी जिसे भगवान् कृष्ण का पूर्णज्ञान है जैसा कि यहाँ भगवान् ने स्वयं कहा है (मच्चितः, मत्परः, मत्स्थानम्) वास्तविक शान्ति प्राप्त कर सकता है और अन्ततोगत्वा कृष्णलोक या गोलोक वृन्दावन को प्राप्त होता है | ब्रह्मसंहिता में (५.३७) स्पष्ट उल्लेख है – गोलोक एवनिवसत्यखिलात्मभूतः– यद्यपि भगवान् सदैव अपने धाम में निवास करते हैं, जिसे गोलोक कहते हैं, तो भी वे अपनी परा-आध्यात्मिक शक्तियों के कारण सर्वव्यापी ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा हैं | कोई भी कृष्ण तथा विष्णु रूप में उनके पूर्ण विस्तार को सही-सही जाने बिना वैकुण्ठ में या भगवान् के नित्यधाम (गोलोक वृन्दावन) में प्रवेश नहीं कर सकता | अतः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ही पूर्णयोगी है क्योंकि उसका मन सदैव कृष्ण के कार्यकलापों में तल्लीन रहता है (स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः) | वेदों में (श्वेताश्वतर उपनिषद् ३.८) भी हम पाते हैं – तमेव विदित्वाति मृत्युमेति– केवल भगवान् कृष्ण को जानने पर जन्म तथा मृत्यु के पथ को जीता जा सकता है | दूसरे शब्दों में, योग की पूर्णता संसार से मुक्ति प्राप्त करने में है, इन्द्रजाल अथवा व्यायाम के करतबों द्वारा जनता को मुख्य बनाने में नहीं |

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्रशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ 6.16 ॥



हे अर्जुन ! जो अधिक खाता है या बहुत कम खाता है, जो अधिक सोता है अथवा जो पर्याप्त नहीं सोता उसके योगी बनने की कोई सम्भावना नहीं है ।

There is no possibility of one's becoming a yogī, O Arjuna, if one eats too much, or eats too little, sleeps too much or does not sleep enough.



यहाँ पर योगियों के लिए भोजन तथा नींद के नियमन की संस्तुति की गई है। अधिक भोजन का अर्थ है शरीर तथा आत्मा को बनाये रखने के लिए आवश्यकता से अधिक भोजन करना। मनुष्यों में मांसाहार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रचुर मात्रा में अन्न, शाक, फल तथा दुग्ध उपलब्ध हैं। ऐसे सादे भोज्यपदार्थ भगवद्गीता के अनुसार सतोगुणी माने जाते हैं। मांसाहार तो तमोगुणियों के लिए है। अतः जो लोग मांसाहार करते हैं, मद्यपान करते हैं, धूम्रपान करते हैं और कृष्ण को भोग लगाये बिना भोजन करते हैं वे पापकर्मों का भोग करेंगे क्योंकि वे दूषित वस्तुएँ खाते हैं। भुज्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्। जो व्यक्ति इन्द्रियसुख के लिए खाता है या अपने लिए भोजन बनाता है, किन्तु कृष्ण को भोजन अर्पित नहीं करता वह केवल पाप खाता है। जो पाप खाता है और नियत मात्र से अधिक भोजन करता है वह पूर्णयोग का पालन नहीं कर सकता। सबसे उत्तम यही है कि कृष्ण को अर्पित भोजन के अच्छिष्ट भाग को ही खाया जाय। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति कभी भी ऐसा भोजन नहीं करता, जो इससे पूर्व कृष्ण को अर्पित न किया गया हो। अतः केवल कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ही योगाभ्यास में पूर्णता प्राप्त कर सकता है। न ही ऐसा व्यक्ति कभी योग का अभ्यास कर सकता है जो कृतिम उपवास की अपनी विधियाँ निकाल कर भोजन नहीं करता है। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति शास्त्रों द्वारा अनुमोदित उपवास करता है। न तो वह आवश्यकता से अधिक उपवास रखता है, न ही अधिक खाता है। इस प्रकार वह योगाभ्यास करने के लिए पूर्णतया योग्य है। जो आवश्यकता से अधिक खाता है वह सोते समय अनेक सपने देखेगा, अतः आवश्यकता से अधिक सोएगा। मनुष्य को प्रतिदिन छः घंटे से अधिक नहीं सोना चाहिए। जो व्यक्ति चौबीस घंटे में से छः घंटे से अधिक सोता है, वह अवश्य ही तमोगुणी है। तमोगुणी व्यक्ति आलसी होता है और अधिक सोता है। ऐसा व्यक्ति योग नहीं साध सकता।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्रावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ 6.17 ॥



bhaktiprasad.in

जो खाने, सोने, आमोद-प्रमोद तथा काम करने की आदतों में नियमित रहता है, वह योगाभ्यास द्वारा समस्त भौतिक क्लेशों को नष्ट कर सकता है ।

He who is temperate in his habits of eating, sleeping, working and recreation can mitigate all material pains by practicing the yoga system.



खाने, सोने, रक्षा करने तथा मैथुन करने में – जो शरीर की आवश्यकताएँ हैं – अति करने से योगाभ्यास की प्रगति रुक जाती है | जहाँ तक खाने का प्रश्न है, इसे तो प्रसादम् या पवित्रकृत भोजन के रूप में नियमित बनाया जा सकता है | भगवद्गीता (१.२६) के अनुसार भगवान् कृष्ण को शाक, फूल, फल, अन्न, दुध आदि भेंट किये जाते हैं | इस प्रकार एक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को ऐसा भोजन न करने का स्वतः प्रशिक्षण प्राप्त रहता है, जो मनुष्य के खाने योग्य नहीं होता या सतोगुणी नहीं होता | जहाँ तक सोने का प्रश्न है, कृष्णभावनाभावित व्यक्ति कृष्णभावनामृत में कर्म करने में निरन्तर सतर्क रहता है, अतः निद्रा में वह व्यर्थ समय नहीं गँवाता | अव्यर्थ-कालत्वम्– कृष्णभावनाभावित व्यक्ति अपना एक मिनट का समय भी भगवान् की सेवा के बिना नहीं बिताना चाहता | अतः वह कम से कम सोता है | इसके आदर्श श्रील रूप गोस्वामी हैं, जो कृष्ण की सेवा में निरन्तर लगे रहते थे और दिनभर में दो घंटे से अधिक नहीं सोते थे, और कभी-कभी तो उतना भी नहीं सोते थे | ठाकुर हरिदास तो अपनी माला में तीन लाख नामों का जप किये बिना न तो प्रसाद ग्रहण करते थे और न सोते ही थे | जहाँ तक कार्य का प्रश्न है, कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ऐसा कोई भी कार्य नहीं करता जो कृष्ण से सम्बन्धित न हो | इस प्रकार उसका कार्य सदैव नियमित रहता है और इन्द्रियतृप्ति से अदूषित | चूँकि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के लिए इन्द्रियतृप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता, अतः उसे तनिक भी भौतिक अवकाश नहीं मिलता | चूँकि वह अपने कार्य, वचन, निद्रा, जागृति तथा अन्य शारीरिक कार्यों में नियमित रहता है, अतः उसे कोई भौतिक दुःख नहीं सताता |

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ 6.18 ॥



जब योगी योगाभ्यास द्वारा अपने मानसिक कार्यकलापों को वश में कर लेता है और अध्यात्म में स्थित हो जाता है अर्थात् समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित हो जाता है, तब वह योग में सुस्थिर कहा जाता है ।

When the yogī, by practice of yoga, disciplines his mental activities and becomes situated in Transcendence-devoid of all material desires-he is said to have attained yoga.



साधारण मनुष्य की तुलना में योगी के कार्यों में यह विशेषता होती है कि वह समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त रहता है जिनमें मैथुन प्रमुख है | एक पूर्णयोगी अपने मानसिक कार्यों में इतना अनुशासित होता है कि उसे कोई भी भौतिक इच्छा विचलित नहीं कर सकती | यह सिद्ध अवस्था कृष्णभावनाभावित व्यक्तियों द्वारा स्वतः प्राप्त हो जाती है, जैसा कि श्रीमद्भागवत में (१.४.१८-२०) कहा गया है – स वै मनः कृष्णपदारविन्द्योर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने । करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ मुकुन्दलिंगालयदर्शने दृशौ तद्बृत्यगातस्पर्शेऽगसंगमम् । ग्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदार्पिते ॥ पादौ हरे: क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवंदने । कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रयाः रतिः ॥ “राजा अम्बरीश ने सर्वप्रथम अपने मन को भगवान् के चरणकमलों पर स्थिर कर दिया; फिर, क्रमशः अपनी वाणी को कृष्ण के गुणानुवाद में लगाया, हाथों को भगवान् के मन्दिर को स्वच्छ करने, कानों को भगवान् के कार्यकलापों को सुनने, आँखों को भगवान् के दिव्यरूप का दर्शन करने, शरीर को अन्य भक्तों के शरीरों का स्पर्श करने, ग्राणेन्द्रिय को भगवान् पर चढ़ाये गये कमलपुष्प की सुगन्ध सुँधने, जीभ को भगवान् के चरणकमलों में चढ़ाये गये तुलसी पत्रों का स्वाद लेने, पाँवों को तीर्थयात्रा करने तथा भगवान् के मन्दिर तक जाने, सर को भगवान् को प्रणाम करने तथा अपनी इच्छाओं को भगवान् की इच्छा पूरी करने में लगा दिया | ये सारे दिव्यकार्य शुद्ध भक्त के सर्वथा अनुरूप हैं | ”निर्विशेषवादियों के लिए यह दिव्य व्यवस्था अनिर्वचनीय हो सकती है, किन्तु कृष्णभावनाभावितव्यक्ति के लिए यह अत्यन्त सुगम एवं व्यावहारिक है, जैसा कि महाराज अम्बरीष की उपरिवर्णित जीवनचर्या से स्पष्ट हो जाता है | जब तक निरन्तर स्परण द्वारा भगवान् के चरणकमलों में मन को स्थिर नहीं कर लिया जाता, तब तक ऐसे दिव्यकार्य व्यावहारिक नहीं बन पाते | अतः भगवान् की भक्ति में इन विहित कार्यों को अर्चन् कहते हैं जिसका अर्थ है – समस्त इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगाना | इन्द्रियों तथा मन को कुछ न कुछ कार्य चाहिए | कोरा निग्रह व्यावहारिक नहीं है | अतः सामान्य लोगों के लिए – विशेषकर जो लोग संन्यास आश्रम में नहीं है – ऊपर वर्णित इन्द्रियों तथा मन का दिव्यकार्य ही दिव्य सफलता की सही विधि है, जिसे भगवद्गीता में युक्त कहा गया है ।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ 6.19 ॥



जिस प्रकार वायुरहित स्थान में दीपक हिलता-डुलता नहीं, उसी तरह जिस योगी का मन वश में होता है, वह आत्मतत्त्व के ध्यान में सदैव स्थिर रहता है ।

As a lamp in a windless place does not waver, so the transcendentalist, whose mind is controlled, remains always steady in his meditation on the transcendent Self.



कृष्णभावनाभावित व्यक्ति अपने आराध्य देव के चिन्तन में उसी प्रकार
अविचलित रहता है जिस प्रकार वायुरहित स्थान में एक दीपक रहता है।



20 -23.



यत्प्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योग सेवया ।
यत्र चैवत्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ 6.20 ॥

सुख मात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ 6.21 ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यास्मन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ 6.22 ॥

तं विद्याद्वःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥ 6.23 ॥





सिद्धि की अवस्था में, जिसे समाधि कहते हैं, मनुष्य का मन योगाभ्यास के द्वारा भौतिक मानसिक क्रियाओं से पूर्णतया संयमित हो जाता है। इस सिद्धि की विशेषता यह है कि मनुष्य शुद्ध मन से अपने को देख सकता है और अपने आपमें आनन्द उठा सकता है। उस आनन्दमयी स्थिति में वह दिव्य इन्द्रियों द्वारा असीम दिव्यसुख में स्थित रहता है। इस प्रकार स्थापित मनुष्य कभी सत्य से विपथ नहीं होता और इस सुख की प्राप्ति हो जाने पर वह इससे बड़ा कोई दूसरा लाभ नहीं मानता। ऐसी स्थिति को पाकर मनुष्य बड़ीसे बड़ी कठिनाई में भी विचलित नहीं होता। यह निःसन्देह भौतिक संसर्ग से उत्पन्न होने वाले समस्त दुःखों से वास्तविक मुक्ति है।





The stage of perfection is called trance, or samā-dhi, when one's mind is completely restrained from material mental activities by practice of yoga. This is characterized by one's ability to see the self by the pure mind and to relish and rejoice in the self. In that joyous state, one is situated in boundless transcendental happiness and enjoys himself through transcendental senses. Established thus, one never departs from the truth, and upon gaining this he thinks there is no greater gain. Being situated in such a position, one is never shaken, even in the midst of greatest difficulty. This indeed is actual freedom from all miseries arising from material contact.



योगाभ्यास से मनुष्य भौतिक धारणाओं से क्रमशः विरक्त होता जाता है | यह योग का प्रमुख लक्षण है | इसके बाद वह समाधि में स्थित हो जाता है जिसका अर्थ यह होता है कि दिव्य मन तथा बुद्धि के द्वारा योगी अपने आपको परमात्मा समझने का भ्रम न करके परमात्मा की अनुभूति करता है | योगाभ्यास बहुत कुछ पतञ्जलि की पद्धति पर आधारित है | कुछ अप्रामाणिक भाष्यकार जीवात्मा तथा परमात्मा में अभेद स्थापित करने का प्रयास करते हैं और अद्वैतवादी इसे ही मुक्ति मानते हैं, किन्तु वे पतञ्जलि की योगपद्धति के वास्तविक प्रयोजन को नहीं जानते | पतञ्जलि पद्धति में दिव्य आनन्द को स्वीकार किया गया है, किन्तु अद्वैतवादी इस दिव्य आनन्द को स्वीकार नहीं करते क्योंकि उन्हें भ्रम है कि इससे कहीं उनके अद्वैतवाद में बाधा न उपस्थित हो जाय | अद्वैतवादी ज्ञान तथा ज्ञाता के द्वैत को नहीं मानते, किन्तु इस श्लोक में दिव्य इन्द्रियों द्वारा अनुभूत दिव्य आनन्द को स्वीकार किया गया है | इसकी पुष्टि योगपद्धति के विव्यात व्याख्याता पतञ्जलि मुनि ने भी की है | योगसूत्र में (३.३४) महर्षि कहते हैं – पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति | यह चितिशक्ति या अन्तरंगा शक्ति दिव्य है | पुरुषार्थ का तात्पर्य धर्म, अर्थ, काम तथा अन्त में परब्रह्म से तादात्म्य या मोक्ष है | अद्वैतवादी परब्रह्म से इस तादात्म्य को कैवल्यम् कहते हैं | किन्तु पतञ्जलि के अनुसार कैवल्यम् वह अन्तरंगा या दिव्य शक्ति है जिससे जीवात्मा अपनी स्वाभाविक स्थिति से अवगत होता है | भगवान् चैतन्य के शब्दों में यह अवस्था चेतोदर्पणामार्जनम् अर्थात् मन रूपी मलिन दर्पण का मार्जन (शुद्धि) है | यह मार्जन वास्तव में मुक्ति या भवमहादावग्निनिर्वापणम् है | प्रारम्भिक निर्वाण सिद्धान्त भी इस नियम के समान है | भागवत में (२.१०.६) इसे स्वरूपेण व्यवस्थितिः कहा गया है | भगवद्गीता के इस श्लोक में भी इसी की पुष्टि हुई है | निर्वाण के बाद आध्यात्मिक कार्यकलापों की या भगवद्गीता की अभिव्यक्ति होती है जिसे कृष्णभावनामृत कहते हैं | भागवत के शब्दों में – स्वरूपेण व्यवस्थितिः– जीवात्मा का वास्तविक जीवन यही है | भौतिक दूषण से अध्यात्मिक जीवन के कल्मण युक्त होने की अवस्था माया है | इस भौतिक दूषण से मुक्ति का अभिप्राय जीवात्मा की मूल दिव्य स्थिति का विनाश नहीं है | पतञ्जलि भी इसकी पुष्टि इस शब्दों से करते हैं – कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति – यह चितिशक्ति या दिव्य आनन्द ही वास्तविक जीवन है

इसका अनुमोदन वेदान्तसूत्र में (१.१.१२) इस प्रकार हुआ है – आनन्दमयोभ्याऽसात्। यह चितिशक्ति ही योग का परमलक्ष्य है और भक्तियोग द्वारा इसे सरलता से प्राप्त किया जाता है। भक्तियोग का विस्तृत विवरण सातवें अध्याय में किया जायेगा। इस अध्याय में वर्णित योगपद्धति के अनुसार समाधियाँ दो प्रकार की होती हैं – सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञातसमाधियाँ। जब मनुष्य विभिन्न दार्शनिक शोधों के द्वारा दिव्य स्थिति को प्राप्त होता है तो यह कहा जाता है कि उसे सम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त हुई है। असम्प्रज्ञात समाधि में संसारी आनन्द से कोई सम्बन्ध नहीं रहता क्योंकि इसमें मनुष्य इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले सभी प्रकार के सुखों से परे हो जाता है। एक बार इस दिव्य स्थिति को प्राप्त कर लेने पर योगी कभी उससे डिगता नहीं। जब तक योगी इस स्थिति को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह असफल रहता है। आजकल के तथाकथित योगाभ्यास में विभिन्न इन्द्रियसुख सम्मिलित हैं, जो योग के सर्वथा विपरीत है। योगी होकर यदि कोई मैथुन तथा मादकद्रव्य सेवन में अनुरक्त होता है तो वह उपह्रासजनक है। यहाँ तक कि जो योगी योग की सिद्धियों के प्रति आकृष्ट रहते हैं वे भी योग में आरूढ़ नहीं कहे जा सकते। यदि योगीजन योग की आनुषंगिक वस्तुओं के प्रति आकृष्ट हैं तो उन्हें सिद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं कहा जा सकता, जैसा कि इस श्लोक में कहा गया है। अतः जो व्यक्ति आसनों के प्रदर्शन या सिद्धियों के चक्कर में रहते हैं उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि इस प्रकार से योग का मुख्य उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। इस युग में योग की सर्वोत्तम पद्धति कृष्णभावनामृत है जो निराशा उत्पन्न करने वाली नहीं है। एक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति अपने धर्म में इतना सुखी रहता है कि उसे किसी अन्य सुख की आकांशा नहीं रह जाती। इस दर्भ-प्रधान युग में हठयोग, ध्यानयोग तथा ज्ञानयोग का अभ्यास करते हुए अनेक अवरोध आ सकते हैं, किन्तु कर्मयोग या भक्तियोग के पालन में ऐसी समस्या सामने नहीं आती। जब तक यह शरीर रहता है तब तक मनुष्य शरीर की आवश्यकताएँ – आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन – को पूरा करना होता है। किन्तु को व्यक्ति शुद्ध भक्तियोग में अथवा कृष्णभावनामृत में स्थित होता है वह शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति करते समय इन्द्रियों को उत्तेजित नहीं करता। प्रत्युत वह घाटे के सौंदे का सर्वोत्तम उपयोग करके, जीवनकी न्यूनतम आवश्यकताओं को स्वीकार करता है और कृष्णभावनामृत में दिव्यसुख भोगता है। वह दुर्घटनाओं, रोगों, अभावों और यहाँ तक की अपने प्रियजनों की मृत्यु जैसी आपातकालीन घटनाओं के प्रति भी निरपेक्ष रहता है, किन्तु कृष्णभावनामृत या भक्तियोग सम्बन्धी अपने कर्मों को पूरा करने में वह सदैव सचेष्ट रहता है। दुर्घटनाएँ उसे कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर पाती। जैसा कि भगवद्गीता में (२.१४) कहा गया है – आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत। वह इन प्रसांगिक घटनाओं को सहता है क्योंकि वह यह भलीभाँति जानता है कि ये घटनाएँ ऐसी ही आती-जाती रहती हैं और इनसे उसके कर्तव्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार वह योगाभ्यास में परम सिद्धि प्राप्त करता है।

स निश्चयेन योक्तव्ये योगोऽनिर्विणचेतसा ।
 सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
 मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ 6.24 ॥

मनुष्य को चाहिए कि संकल्प तथा श्रद्धा के साथ योगाभ्यास में लगे और पथ से विचलित न हो । उसे चाहिए कि मनोधर्म से उत्पन्न समस्त इच्छाओं को निरपवाद रूप से त्याग दे और इस प्रकार मन के द्वारा सभी ओर से इन्द्रियों को वश में करे ।

One should engage oneself in the practice of yoga with undeviating determination and faith. One should abandon, without exception, all material desires born of false ego and thus control all the senses on all sides by the mind.



योगभ्यास करने वाले को दृढ़संकल्प होना चाहिए और उसे चाहिए कि बिना विचलित हुए धैर्यपूर्वक अभ्यास करे। अन्त में उसकी सफलता निश्चित है – उसे यह सोच कर बड़े ही धैर्य से इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए और यदि सफलता मिलने में विलम्ब हो रहा हो तो निरुत्साहित नहीं होना चाहिए। ऐसे दृढ़ अभ्यासी की सफलता सुनिश्चित है। भक्तियोग के सम्बन्ध में रूप गोस्वामी का कथन है – उत्साहान्निश्चयाध्दैर्यात् तत्त्वकर्म प्रवर्तनात्। संगत्यागात्सतो वृत्तेः षड्भिर्भक्तिः प्रसिद्धयति ॥ “मनुष्य पूर्ण हार्दिक उत्साह, धैर्य तथा संकल्प के साथ भक्तियोग का पूर्णरूपेण पालन भक्त के साथ रहकर निर्धारित कर्मों के करने तथा सत्कार्यों में पूर्णतया लगे रहने से कर सकता है।” (उपदेशामृत– ३) जहाँ तक संकल्प की बात है, मनुष्य को चाहिए कि उस गौरैया का आदर्श ग्रहण करे जिसके सारे अंडे समुद्र की लहरों में मग्न हो गये थे। कहते हैं कि एक गौरैया ने समुद्र तट पर अंडे दिए, किन्तु विशाल समुद्र उन्हें अपनी लहरों में समेट ले गया। इस पर गौरैया अत्यन्त क्षुब्ध हुई और उसने समुद्र से अंडे लौटा देने के लिए कहा। किन्तु समुद्र ने उसकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया। अतः उसने समुद्र को सुखा डालने की ठान ली। वह अपनी नहीं सी चोंच से पानी उलीचने लगी। सभी उसके इस असंभव संकल्प का उपहास करने लगे। उसके इस कार्य की सर्वत चर्चा चलने लगी तो अन्त में भगवान् विष्णु के विराट वाहन पक्षिराज गरुड़ ने यह बात सुनी। उन्हें अपनी इस नहीं पक्षी बहिन पर दया आई और वे गौरैया से मिलने आये। गरुड़ उस नहीं गौरैया के निश्चय से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी सहायता करने का वचन दिया। गरुड़ ने तुरन्त समुद्र से कहा कि वह उसके अंडे लौटा दे, नहीं तो उसे स्वयं आगे आना पड़ेगा। इससे समुद्र भयभीत हुआ और उसने अंडे लौटा दिये। वह गौरैया गरुड़ की कृपा से सुखी हो गई। इसी प्रकार योग, विशेषतया कृष्णभावनामृत में भक्तियोग, अत्यन्त दुष्कर प्रतीत हो सकता है, किन्तु जो कोई संकल्प के साथ नियमों का पालन करता है, भगवान् निश्चित रूप से उसकी सहायता करते हैं, क्योंकि जो अपनी सहायता आप करते हैं, भगवान् उनकी सहायता करते हैं।

शनैः शनैरूपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ 6.25 ॥



धीरे-धीरे, क्रमशः पूर्ण विश्वासपूर्वक बुद्धि के द्वारा समाधि में स्थित होना चाहिए और इस प्रकार मन को आत्मा में ही स्थित करना चाहिए तथा अन्य कुछ भी नहीं सोचना चाहिए ।

Gradually, step by step, with full conviction, one should become situated in trance by means of intelligence, and thus the mind should be fixed on the Self alone and should think of nothing else.



समुचित विश्वास तथा बुद्धि के द्वारा मनुष्य को धीरे-धीरे सारे इन्द्रियकर्म करने बन्द कर देना चाहिए । यह प्रत्याहार कहलाता है । मन को विश्वास, ध्यान तथा इन्द्रिय-निवृत्ति द्वारा वश में करते हुए समाधि में स्थिर करना चाहिए । उस समय देहात्मबुद्धि में अनुरक्त होने की कोई सम्भावना नहीं रह जाती । दूसरे शब्दों में, जब तक इस शरीर का अस्तित्व है तब तक मनुष्य पदार्थ में लगा रहता है, किन्तु उसे इन्द्रियतृप्ति के विषय में नहीं सोचना चाहिए । उसे परमात्मा के आनन्द के अतिरिक्त किसी अन्य आनन्द का चिन्तन नहीं करना चाहिए । कृष्णभावनामृत का अभ्यास करने से यह अवस्था सहज ही प्राप्त की जा सकती है ।



यतो यतो निश्चलति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ 6.26 ॥

मन अपनी चंचलता तथा अस्थिरता के कारण जहाँ कहीं भी विचरण करता हो, मनुष्य को चाहिए कि उसे वहाँ से खींचे और अपने वश में लाए ।

From whatever and wherever the mind wanders due to its flickering and unsteady nature, one must certainly withdraw it and bring it back under the control of the Self.



तात्पर्य : मन स्वभाव से चंचल और अस्थिर है | किन्तु स्वरूपसिद्ध योगी को मन को वश में लाना होता है, उस पर मन का अधिकार नहीं होना चाहिए | जो मन को (तथा इन्द्रियों को भी) वश में रखता है, वह गोस्वामी या स्वामी कहलाता है और जो मन के वशीभूत होता है वह गोदास अर्थात् इन्द्रियों का सेवक कहलाता है | गोस्वामी इन्द्रियसुख के मानक से भिज्ञ होता है | दिव्य इन्द्रियसुख वह है जिसमें इन्द्रियाँ हृषिकेश अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी भगवान् कृष्ण की सेवा में लगी रहती हैं | शुद्ध इन्द्रियों के द्वारा कृष्ण की सेवा ही कृष्णचेतना या कृष्णभावनामृत कहलाती है | इन्द्रियों को पूर्णवश में लाने की यही विधि है | इससे भी बढ़कर बात यह है कि यह योगाभ्यास की परम सिद्धि भी है |

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्पषम् ॥ 6.27 ॥



जिस योगी का मन मुझ में स्थिर रहता है, वह निश्चय ही दिव्यसुख की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करता है । वह रजोगुण से परे हो जाता है, वह परमात्मा के साथ अपनी गुणात्मक एकता को समझता है और इस प्रकार अपने समस्त विगत कर्मों के फल से निवृत्त हो जाता है ।

The yogī whose mind is fixed on Me verily attains the highest happiness. By virtue of his identity with Brahman, he is liberated; his mind is peaceful, his passions are quieted, and he is freed from sin.



ब्रह्मभूत वह अवस्था है जिसमें भौतिक कल्मष से मुक्त होकर भगवान् की दिव्यसेवा में स्थित हुआ जाता है । मद्भक्तिं लभते पराम् (भगवद्गीता १८.५४) । जब तक मनुष्य का मन भगवान् के चरणकमलों में स्थिर नहीं हो जाता तब तक कोई ब्रह्मरूप में नहीं रह सकता । स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः । भगवान् की दिव्य प्रेमभक्ति में निरन्तर प्रवृत्त रहना या कृष्णभावनामृत में रहना वस्तुतः रजोगुण तथा भौतिक कल्मष से मुक्त होना है ।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ 6.28 ॥



इस प्रकार योगाभ्यास में निरन्तर लगा रहकर आत्मसंयमी योगी समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है और भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में परमसुख प्राप्त करता है ।

Steady in the Self, being freed from all material contamination, the yogī achieves the highest perfectional stage of happiness in touch with the Supreme Consciousness.



आत्म-साक्षात्कार का अर्थ है – भगवान् के सम्बन्ध में अपनी स्वाभाविक स्थिति को जानना | जीव (आत्मा) भगवान का अंश है और उसकी स्थिति भगवान् की दिव्यसेवा करते रहना है | ब्रह्म के साथ यह दिव्य सान्निध्य ही ब्रह्म-संस्पर्श कहलाता है |

सर्वभूतस्थमात्मनं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत समदर्शनः ॥ 6.29 ॥



वास्तविक योगी समस्त जीवों में मुझको तथा मुझमें समस्त जीवों को देखता है । निस्सन्देह स्वरूपसिद्ध व्यक्ति मुझ परमेश्वर को सर्वत देखता है ।

A true yogī observes Me in all beings, and also sees every being in Me. Indeed, the self-realized man sees Me everywhere.



कृष्णभावनाभावित योगी पूर्ण द्रष्टा होता है क्योंकि वह परब्रह्म कृष्ण को हर प्राणी के हृदय में परमात्मा रूप में स्थित देखता है | ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशोऽर्जुन तिष्ठति | अपने परमात्मा रूप में भगवान् एक कुत्ते तथा एक ब्राह्मण दोनों के हृदय में स्थित होते हैं | पूर्णयोगी जानता है कि भगवान् नित्यरूप में दिव्य हैं और कुत्ते या ब्राह्मण में स्थित होने से भी भौतिक रूप से प्रभावित नहीं होते | यही भगवान् की परम निरपेक्षता है | यद्यपि जीवात्मा भी एक-एक हृदय में विद्यमान है, किन्तु वह एकसाथ समस्त हृदयों में (सर्वव्यापी) नहीं है | आत्मा तथा परमात्मा का यही अन्तर है | जो वास्तविक रूप से योगाभ्यास करने वाला नहीं है, वह इसे स्पष्ट रूप में नहीं देखता | एक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति कृष्ण को आस्तिक तथा नास्तिक दोनों में देख सकता है | स्मृति में इसकी पुष्टि इस प्रकार हुई है – आततत्वाच्च मातृत्वाच्च आत्मा हि परमो हरिः | भगवान् सभी प्राणियों का स्वोत होने के कारण माता और पालनकर्ता के समान हैं | जिस प्रकार माता अपने समस्त पुत्रों के प्रति समभाव रखती है, उसी प्रकार परम पिता (या माता) भी रखता है | फलस्वरूप परमात्मा प्रत्येक जीव में निवास करता है | बाह्य रूप से भी प्रत्येक जीव भगवान् की शक्ति (भगवद्शक्ति) में स्थित है | जैसा कि सातवें अध्याय में बताया जाएगा, भगवान् की दो मुख्य शक्तियाँ हैं – परा तथा अपरा | जीव पराशक्ति का अंश होते हुए भी अपराशक्ति से बद्ध है | जीव सदा ही भगवान् की शक्ति में स्थित है | प्रत्येक जीव किसी न किसी प्रकार भगवान् में ही स्थित रहता है | योगी समदर्शी है क्योंकि वह देखता है कि सारे जीव अपने-अपने कर्मफल के अनुसार विभिन्न स्थितियों में रहकर भगवान् के दास होते हैं | अपराशक्ति में जीव भौतिक इन्द्रियों का दास रहता है जबकि पराशक्ति में वह साक्षात् परमेश्वर का दास रहता है | इस प्रकार प्रत्येक अवस्था में जीव ईश्वर का दास है | कृष्णभावनाभावित व्यक्ति में यह समदृष्टि पूर्ण होती है |



यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ 6.30 ॥

जो मुझे सर्वत्र देखता है और सब कुछ मुझमें देखता है उसके लिए न
तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और न वह मेरे लिए अदृश्य होता है ।

For one who sees Me everywhere and sees everything in
Me, I am never lost, nor is he ever lost to Me.



कृष्णभावनाभावित व्यक्ति भगवान् कृष्ण को सर्वत देखता है और सारी वस्तुओं को कृष्ण में देखता है | ऐसा व्यक्ति भले ही प्रकृति की पृथक्-पृथक् अभिव्यक्तियों को देखता प्रतीत हो, किन्तु वह प्रत्येक दशा में इस कृष्णभावनामृत से अवगत रहता है कि प्रत्येक वस्तु कृष्ण की ही शक्ति की अभिव्यक्ति है | कृष्णभावनामृत का मूल सिद्धान्त ही यह है कि कृष्ण के बिना कोई अस्तित्व नहीं है और कृष्ण ही सर्वेश्वर हैं | कृष्णभावनामृत कृष्ण-प्रेम का विकास है – ऐसी स्थिति जो भौतिक मोक्ष से भी परे है | आत्मसाक्षात्कार के ऊपर कृष्णभावनामृत की इस अवस्था में भक्त कृष्ण से इस अर्थ में एकरूप हो जाता है कि उसके लिए कृष्ण ही सब कुछ हो जाते हैं और भक्त प्रेममय कृष्ण से पूरित हो उठता है | तब भगवान् तथा भक्त के बीच अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित हो जाता है | उस अवस्था में जीव को विनष्ट नहीं किया जा सकता और न भगवान् भक्त की दृष्टि से ओङ्गल होते हैं | कृष्ण में तादात्म्य होना आध्यात्मिक लय (आत्मविनाश) है | भक्त कभी भी ऐसी विपदा नहीं उठाता | ब्रह्मसंहिता (५.३८) में कहा गया है- **प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्तिविलोचनेन, सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति | यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं, गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ||** “मैं आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनका दर्शन भक्तगण प्रेमरूपी अंजन लगे नेत्रों से करते हैं | वे भक्त के हृदय में स्थित श्यामसुन्दर रूप में देखे जाते हैं |” इस अवस्था में न तो भगवान् कृष्ण अपने भक्त की दृष्टि से ओङ्गल होते हैं और न भक्त उनकी दृष्टि से ओङ्गल हो पाते हैं | यही बात योगी के लिए भीसत्य है क्योंकि वह अपने हृदय के भीतर परमात्मा रूप में भगवान् का दर्शन करता रहता है | ऐसा योगी शुद्ध भक्त बन जाता है और अपने अन्दर भगवान् को देखे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता |

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ 6.31 ॥



जो योगी मुझे तथा परमात्मा को अभिन्न जानते हुए परमात्मा की भक्तिपूर्वक सेवा करता है, वह हर प्रकार से मुझमें सदैव स्थित रहता है।

The yogī who knows that I and the Supersoul within all creatures are one worships Me and remains always in Me in all circumstances.



जो योगी परमात्मा का ध्यान करता है, वह अपने अन्तःकरण में चतुर्भुज विष्णु का दर्शन कृष्ण के पूर्णरूप में शंख, चक्र, गदा तथा कमलपुष्प धारण किये करता है | योगी को यह जानना चाहिए कि विष्णु कृष्ण से भिन्न नहीं है | परमात्मा रूप में कृष्ण जन-जन के हृदय में स्थित हैं | यही नहीं, असंख्य जीवों के हृदयों में स्थित असंख्य परमात्माओं में कोई अन्तर नहीं है | न ही कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति में निरन्तर व्यस्त व्यक्ति तथा परमात्मा के ध्यान में निरत एक पूर्णयोगी के बीच कोई अन्तर है | कृष्णभावनामृत में योगी सदैव कृष्ण में ही स्थित रहता है भले हि भौतिक जगत् में वह विभिन्न कार्यों में व्यस्त क्यों न हो | इसकी पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृत सिन्धु में (१.२.१८७) हुई है - निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते| कृष्णभावनामृत में रत रहने वाला भगवद्भक्त स्वतः मुक्त हो जाता है | नारद पञ्चरात्र में इसकी पुष्टि इस प्रकार हुई है - दिक्कालाद्यनवच्छिन्ने कृष्णे चेतो विधाय च | तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवो ब्रह्मणि योजयेत् || “देश-काल से अतीत तथा सर्वव्यापी श्रीकृष्णके दिव्यरूप में ध्यान एकाग्र करने से मनुष्य कृष्ण के चिन्तन में तन्मय हो जाता है और तब उनके दिव्य सान्निध्य की सुखी अवस्था को प्राप्त होता है |” योगाभ्यास में समाधि की सर्वोच्च अवस्था कृष्णभावनामृत है | केवल इस ज्ञान से कि कृष्ण प्रत्येक जन के हृदय में परमात्मा रूप में उपस्थित हैं योगी निर्दोष हो जाता है | वेदों में (गोपालतापनी उपनिषद् १.२१) भगवान् की इस अचिन्त्य शक्ति की पुष्टि इस प्रकार होती है - एकोऽपि सन्बहुधा योऽवभाति- “यद्यपि भगवान् एक है, किन्तु वह जितने सारे हृदय हैं उनमें उपस्थित रहता है |” इसी प्रकार स्मृति शास्त्र का कथन है- एक एव परो विष्णुः सर्वव्यापी न संशयः | ऐश्वर्याद् रूपमेकं च सूर्यवत् बहुधेयते || “विष्णु एक हैं फिर भी वे सर्वव्यापी हैं | एक रूप होते हुए भी वे अपनी अचिन्त्य शक्ति से सर्वत उपस्थित रहते हैं, जिस प्रकार सूर्य एक ही समय अनेक स्थानों में दिखता है |”

आत्मैपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ 6.32 ॥



हे अर्जुन ! वह पूर्णयोगी है जो अपनी तुलना से समस्त प्राणियों की उनके सुखों तथा दुखों में वास्तविक समानता का दर्शन करता है ।

He is a perfect yogī who, by comparison to his own self, sees the true equality of all beings, both in their happiness and distress, O Arjuna!



कृष्णभावनाभावित व्यक्ति पूर्ण योगी होता है । वह अपने व्यक्तिगत अनुभव से प्रत्येक प्राणी के सुख तथा दुःख से अवगत होता है । जीव के दुख का कारण ईश्वर से अपने सम्बन्ध का विस्मरण होना है । सुख का कारण कृष्ण को मनुष्यों के समस्त कार्यों का परम भोक्ता, समस्त भूमि तथा लोकों का स्वामी एवं समस्त जीवों का परम हितैषी मिल समझना है । पूर्ण योगी यह जानता है कि भौतिक प्रकृति के गुणों से प्रभावित बद्धजीव कृष्ण से अपने सम्बन्ध को भूल जाने के कारण तीन प्रकार के तापों(दुखों) को भोगता है; और चँकि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति सुखी होता है इसीलिए वह कृष्णज्ञान को सर्वत्र वितरित कर देना चाहता है । चँकि पूर्णयोगी कृष्णभावनाभावित बनने के महत्व को घोषित करता चलता है; अतः वह विश्व का सर्वश्रेष्ठ उपकारी एवं भगवान् का प्रियतम सेवक है । न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिचन्मे प्रियकृत्तमः (भगवद्गीता १८.६९) । दूसरे शब्दों में, भगवद्वक्त सदैव जीवों के कल्याण को देखता है और इस तरह वह प्रत्येक प्राणी का सखा होता है । वह सर्वश्रेष्ठ योगी है क्योंकि वह स्वान्तःसुखाय सिद्धि नहीं चाहता, अपितु अन्यों के लिए भी चाहता है । वह अपने मिल जीवों से द्वेष नहीं करता । यही है वह अन्तर जो एक भगवद्वक्त तथा आत्मोन्नति में ही रुचि वाले योगी में होता है । जो योगी पूर्णरूप से ध्यान धरने के लिए एकान्त स्थान में चला जाता है, वह उतना पूर्ण नहीं होता जितना कि वह भक्त जो प्रत्येक व्यक्ति को कृष्णभावनाभावित बनाने का प्रयास करता रहता है ।

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन् ।

एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥ 6.33 ॥



अर्जुन ने कहा – हे मधुसूदन ! आपने जिस योगपद्धति का संक्षेप में वर्णन किया है, वह मेरे लिए अव्यावहारिक तथा असहनीय है, क्योंकि मन चंचल तथा अस्थिर है ।

Arjuna said: O Madhusūdana, the system of yoga which you have summarized appears impractical and unendurable to me, for the mind is restless and unsteady.



भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के लिए शुचौ देश से लेकर योगी परमो मतः तक जिस योगपद्धति का वर्णन किया है उसे अर्जुन अपनी असमर्थता के कारण अस्वीकार कर रहा है। इस कलियुग में सामान्य व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह अपना घर छोड़कर किसी पर्वत या जंगल के एकान्त स्थान में जाकर योगाभ्यास करे। आधुनिक युग की विशेषता है – अल्पकालिक जीवन के लिए घोर संघर्ष। लोग सरल, व्यवहारिक साधनों से भी आत्म-साक्षात्कार के लिए उत्सुक या गम्भीर नहीं हैं तो फिर इस कठिन योगपद्धति के विषय में क्या कहा जा सकता है जो जीवन शैली, आसन विधि, स्थान के चयन तथा भौतिक व्यवस्थाओं से विरक्ति का नियमन करती है। व्यावहारिक व्यक्ति के रूप में अर्जुन ने सोचा कि इस योगपद्धति का पालन असम्भव है, भले ही वह कई बातों में इस पद्धति पर खरा उतरता था। वह राजवंशी था और उसमें अनेक सद्गुण थे, वह महान योद्धा था, वह दीर्घायु था और सबसे बड़ी बात तो यह कि वह भगवान् श्रीकृष्ण का घनिष्ठ मित्र था। पाँच हजार वर्ष पूर्व अर्जुन को हमसे अधिक सुविधाएँ प्राप्त थीं तो भी उसने इस योगपद्धति को स्वीकार करने से मना कर दिया। वास्तव में इतिहास में कोई ऐसा प्रलेख प्राप्त नहीं है जिससे यह ज्ञात हो सके कि उसने कभी योगाभ्यास किया हो। अतः इस पद्धति को इस कलियुग के लिए सर्वथा दुष्कर समझना चाहिए। हाँ, कतिपय विरले व्यक्तियों के लिए यह पद्धति सुगम हो सकती है, किन्तु सामान्यजनों के लिए यह असम्भव प्रस्ताव है। यदि पाँच हजार वर्ष पूर्व ऐसा था तो आधुनिक समय के लिए क्या कहना? जो लोग विभिन्न तथाकथित स्कूलों तथा समितियों के द्वारा इस योगपद्धति का अनुकरण कर रहे हैं, भले ही सन्तोषजनक प्रतीत हो, किन्तु वे सचमुच ही अपना समय गवाँ रहे हैं। वे अपने अभीष्ट लक्ष्य के प्रति सर्वथा अज्ञानी हैं।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्वृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ 6.34 ॥



हे कृष्ण ! चूँकि मन चंचल (अस्थिर), उच्छृंखल, हठीला तथा अत्यन्त बलवान है, अतः मुझे इसे वश में करना वायु को वश में करने से भी अधिक कठिन लगता है ।

For the mind is restless, turbulent, obstinate and very strong, O Kṛṣṇa, and to subdue it is, it seems to me, more difficult than controlling the wind.



मन इतना बलवान् तथा दुराग्रही है कि कभी-कभी यह बुद्धि का उल्लंघन कर देता है, यद्यपि उसे बुद्धि के अधीन माना जाता है | इस व्यवहार-जगत् में जहाँ मनुष्य को अनेक विरोधी तत्त्वों से संघर्ष करना होता है उसके लिए मन को वश में कर पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है | कृतिम रूप में मनुष्य अपने मिल तथा शत्रु दोनों के प्रति मानसिक संतुलन स्थापित कर सकता है, किन्तु अंतिम रूप में कोई भी संसारी पुरुष ऐसा नहीं कर पाता, क्योंकि ऐसा कर पाना वेगवान वायु को वश में करने से भी कठिन है | वैदिक साहित्य (कठोपनिषद् १.३.३-४) में कहा गया है – आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च, बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च | इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्, आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः || “प्रत्येक व्यक्ति इस भौतिक शरीर रूपी रथ पर आरूढ़ है और बुद्धि इसका सारथी है | मन लगाम है और इन्द्रियाँ घोड़े हैं | इस प्रकार मन तथा इन्द्रियों की संगती से यह आत्मा सुख तथा दुख का भोक्ता है | ऐसा बड़े-बड़े चिन्तकों का कहना है |” यद्यपि बुद्धि को मन का नियन्त्रण करना चाहिए, किन्तु मन इतना प्रबल तथा हठी है कि इसे अपनी बुद्धि से भी जीत पाना कठिन हो जाता है जिस प्रकार कि अच्छी से अच्छी दवा द्वारा कभी-कभी रोग वश में नहीं हो पाता | ऐसे प्रबल मन को योगाभ्यास द्वारा वश में किया जा सकता है, किन्तु ऐसा अभ्यास कर पाना अर्जुन जैसे संसारी व्यक्ति के लिए कभी भी व्यावहारिक नहीं होता | तो फिर आधुनिक मनुष्य के सम्बन्ध में क्या कहा जाय? यहाँ पर प्रयुक्त उपमा अत्यन्त उपयुक्त है – झंझावात को रोक पाना कठिन होता है और उच्छृंखल मन को रोक पाना तो और भी कठिन है | मन को वश में रखने का सरलतम उपाय, जिसे भगवान् चैतन्य ने सुझाया है, यह है कि समस्त दैन्यता के साथ मोक्ष ले लिए “हरे कृष्ण” महामन्त्र का कीर्तन किया जाय | विधि यह है – स वै मनः कृष्ण पदारविन्दयोः– मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन को पूर्णतया कृष्ण में लगाए | तभी मन को विचलित करने के लिए अन्य व्यस्तताएँ शेष नहीं रह जाएँगी |

श्री भगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ 6.35 ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – हे महाबाहो कुन्तीपुत्र ! निस्सन्देह चंचल
मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है; किन्तु उपयुक्त अभ्यास द्वारा
तथा विरक्ति द्वारा ऐसा सम्भव है ।

The Blessed Lord said: O mighty-armed son of Kuntī, it is
undoubtedly very difficult to curb the restless mind, but it
is possible by constant practice and by detachment.



अर्जुन द्वारा व्यक्त इस हठीले मन को वश में करने की कठिनाई को भगवान् स्वीकार करते हैं। किन्तु साथ ही वे सुझाते हैं कि अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा यह सम्भव है। यह अभ्यास क्या है? वर्तमान युग में तीर्थवास, परमात्मा का ध्यान, मन तथा इन्द्रियों का निग्रह, ब्रह्मचर्यपालन, एकान्त-वास आदि कठोर विधि-विधानों का पालन कर पाना सम्भव नहीं है। किन्तु कृष्णभावनामृत के अभ्यास से मनुष्य भगवान् की नवधार्भक्ति का आचरण करता है। ऐसी भक्ति का प्रथम अंग है-कृष्ण के विषय में श्रवण करना। मन को समस्त प्रकार की दुश्चिन्ताओं से शुद्ध करने के लिए यह परम शक्तिशाली एवं दिव्य विधि है। कृष्ण के विषय में जितना ही अधिक श्रवण किया जाता है, उतना ही मनुष्य उन वस्तुओं के प्रति अनासक्त होता है जो मन को कृष्ण से दूर ले जाने वाली हैं। मन को उन सारे कार्यों से विरक्त कर लेने पर, जिनसे कृष्ण का कोई सम्बन्ध नहीं है, मनुष्य सुगमतापूर्वक वैराग्य सीख सकता है। वैराग्य का अर्थ है—पदार्थ से विरक्ति और मन का आत्मा में प्रवृत्त होना। निर्विशेष आध्यात्मिक विरक्ति कृष्ण के कार्यकलापों में मनको लगाने की अपेक्षा अधिक कठिन है। यह व्यावहारिक है, क्योंकि कृष्ण के विषय में श्रवण करने से मनुष्य स्वतः परमात्मा के प्रति आसक्त हो जाता है। यह आसक्ति परेशानुभूति या आध्यात्मिक तुष्टि कहलाती है। यह वैसे ही है जिस तरह भोजन के प्रत्येक कौर से भूखे को तुष्टि प्राप्त होती है। भूख लगने पर मनुष्य जितना अधिक खाता जाता है, उतनी ही अधिक तुष्टि और शक्ति मिलती जाती है। इसी प्रकार भक्ति सम्पन्न करने से दिव्य तुष्टि और शक्ति उसे मिलती जाती है। इसी प्रकार भक्ति सम्पन्न करने से दिव्य तुष्टि की अनुभूति होती है, क्योंकि मन भौतिक वस्तुओं से विरक्त हो जाता है। यह कुछ-कुछ वैसा ही है जैसे कुशल उपचार तथा सुपथ्य द्वारा रोग का इलाज। अतः भगवान् कृष्ण के कार्यकलापों का श्रवण उन्मत्त मन का कुशल उपचार है और कृष्ण को अर्पित भोजन ग्रहण करना रोगी के लिए उपयुक्त पथ्य है। यह उपचार ही कृष्णभावनामृत की विधि है।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ 6.36 ॥



जिसका मन उच्छृंखल है, उसके लिए आत्म-साक्षात्कार कठिन कार्य होता है, किन्तु जिसका मन संयमित है और जो समुचित उपाय करता है उसकी सफलता ध्रुव है । ऐसा मेरा मत है ।

For one whose mind is unbridled, self-realization is difficult work. But he whose mind is controlled and who strives by right means is assured of success. That is My opinion.



भगवान् घोषणा करते हैं कि जो व्यक्ति मन को भौतिक व्यापारों से विलग करने का समुचित उपचार नहीं करता, उसे आत्म-साक्षात्कार में शायद ही सफलता प्राप्त हो सके । भौतिक भोग में मन लगाकर योग का अभ्यास करना मानो अग्नि में जल डाल कर उसे प्रज्ज्वलित करने का प्रयास करना हो । मन का निग्रह किये बिना योगाभ्यास समय का अपव्यय है । योग का ऐसा प्रदर्शन भले ही भौतिक दृष्टि से लाभप्रद हो, किन्तु जहाँ तक आत्म-साक्षात्कार का प्रश्न है यह सब व्यर्थ है । अतः मनुष्य को चाहिए कि भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में निरन्तर मन को लगाकर उसे वश में करे । कृष्णभावनामृत में प्रवृत्त हुए बिना मन को स्थिर कर पाना असम्भव है । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के ही योगाभ्यास का फल सरलता से प्राप्त कर लेता है, किन्तु योगाभ्यास करने वाले को कृष्णभावनाभावित हुए बिना सफलता नहीं मिल पाती ।

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगच्वलितमानसः ।

अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां कृष्ण गच्छति ॥ 6.37 ॥

अर्जुन ने कहा: हे कृष्ण ! उस असफल योगी की गति क्या है जो प्रारम्भ में श्रद्धापूर्वक आत्म-साक्षात्कार की विधि ग्रहण करता है, किन्तु बाद में भौतिकता के करण उससे विचलित हो जाता है और योगसिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाता ?

Arjuna said: What is the destination of the man of faith who does not persevere, who in the beginning takes to the process of self-realization but who later desists due to worldly-mindedness and thus does not attain perfection in mysticism?



भगवद्गीता में आत्म-साक्षात्कार या योग मार्ग का वर्णन है | आत्म-साक्षात्कार का मूलभूत नियम यह है कि जीवात्मा यह भौतिक शरीर नहीं है, अपितु इससे भिन्न है और उसका सुख शाश्वत जीवन, आनन्द तथा ज्ञान में निहित है | ये शरीर तथा मन दोनों से परे हैं | आत्म-साक्षात्कार की खोज ज्ञान द्वारा की जाती है | इसके लिए अष्टांग विधि या भक्तियोग का अभ्यास करना होता है | इनमें से प्रत्येक विधि में जीव को अपनी स्वाभाविक स्थिति, भगवान् से अपने सम्बन्ध तथा उन कार्यों की अनुभूति प्राप्त करनी होती है, जिनके द्वारा वह टूटी हुई शृंखला को जोड़ सके और कृष्णभावनामृत की सर्वोच्च सिद्ध-अवस्था प्राप्त कर सके | इन तीनों विधियों में से किसी का भी पालन करके मनुष्य देर-सवेर अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त होता है | भगवान् ने द्वितीय अध्याय में इस पर बल दिया है कि दिव्यमार्ग में थोड़े से प्रयास से भी मोक्ष की महती आशा है | इन तीनों में से इस युग के लिए भक्तियोग विशेष रूप से उपयुक्त है, क्योंकि ईश-साक्षात्कार की यह श्रेष्ठतम प्रत्यक्ष विधि है, अतः अर्जुन पुनः आश्वस्त होने की दृष्टि से भगवान् कृष्ण से अपने पूर्वकथन की पुष्टि करने को कहता है | भले ही कोई आत्म-साक्षात्कार के मार्ग को निष्ठापूर्वक क्यों न स्वीकार करे, किन्तु ज्ञान की अनुशीलन विधि तथा अष्टांगयोग का अभ्यास इस युग के लिए सामान्यतया बहुत कठिन है, अतः निरन्तर प्रयास होने पर भी मनुष्य अनेक कारणों से असफल हो सकता है | पहला कारण यो यह हो सकता है कि मनुष्य इस विधि का पालन करने में पर्याप्त सतर्क न रह पाये | दिव्यमार्ग का अनुसरण बहुत कुछ माया के ऊपर धावा बोलना जैसा है | फलतः जब भी मनुष्य माया के पाश से छूटना चाहता है, तब वह विविध प्रलोभनों के द्वारा अभ्यासकर्ता को पराजित करना चाहती है | बद्धजीव पहले से प्रकृति के गुणोंद्वारा मोहित रहता है और दिव्य अनुशासनों का पालन करते समय भी उसके पुनः मोहित होने की सम्भावना बनी रहती है | यही योगाच्चलितमानस अर्थात् दिव्य पथ से विचलन कहलाता है | अर्जुन आत्म-साक्षात्कार के मार्ग से विचलन के प्रभाव के सम्बन्ध में जिज्ञासा करता है |

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ 6.38 ॥



हे महाबाहु कृष्ण ! क्या ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग से भ्रष्ट ऐसा व्यक्ति
आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही सफलताओं से च्युत नहीं होता और
छिन्नभिन्न बादल की भाँति विनष्ट नहीं हो जाता जिसके फलस्वरूप
उसके लिए किसी लोक में कोई स्थान नहीं रहता ?

O mighty-armed Krshna, does not such a man, being deviated from the path of Transcendence, perish like a riven cloud, with no position in any sphere?



उन्नति के दो मार्ग हैं | भौतिकतावादी व्यक्तियों की अध्यात्म में कोई रुचि नहीं होती, अतः वे आर्थिक विकास द्वारा भौतिक प्रगति में अत्यधिक रुचि लेते हैं या फिर समुचित कार्य द्वारा उच्चतर लोकों को प्राप्त करने में अधिक रुचि रखते हैं | यदि कोई अध्यात्म के मार्ग को चुनता है, तो उसे सभी प्रकार के तथाकथित भौतिक सुख से विरक्त होना पड़ता है | यदि महत्वाकांक्षी ब्रह्मवादी असफल होता है तो वह दोनों ओर से जाता है | दूसरे शब्दों में, वह न तो भौतिक सुख भोग पाता है, न आध्यात्मिक सफलता ही प्राप्त कर सकता है | उसका कोई स्थान नहीं रहता, वह छिन्न-भिन्न बादल के समान होता है | कभी-कभी आकाश में एक बादल छोटे बादलखंड से विलग होकर बड़े खंड से जा मिलता है, किन्तु यदि वह बड़े बादल से नहीं जुड़ता तो वायु उसे बहा ले जाती है और वह विराट आकाश में लुप्त हो जाता है | ब्रह्मणः पथि ब्रह्म-साक्षात्कार का मार्ग है जो अपने आपको परमेश्वर का अभिन्न अंश जान लेने पर प्राप्त होता है और वह परमेश्वर ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् रूप में प्रकट होता है | भगवान् श्रीकृष्ण परमसत्य के पूर्ण प्राकट्य हैं, अतः जो इस परमपुरुष की शरण में जाता है वही सफल योगी है | ब्रह्म तथा परमात्मा-साक्षात्कार के माध्यम से जीवन के इस तथ्य तक पहुँचने में अनेकानेक जन्म लग जाते हैं (बहूनां जन्मनामन्ते) | अतः दिव्य-साक्षात्कार का सर्वश्रेष्ठ मार्ग भक्तियोग या कृष्णभावनामृत की प्रत्यक्ष विधि है |

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्धते ॥ 6.39 ॥



हे कृष्ण ! यही मेरा सन्देह है, और मैं आपसे इसे पूर्णतया दूर करने की प्रार्थना कर रहा हूँ । आपके अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा नहीं है, जो इस सन्देह को नष्ट कर सके ।

This is my doubt O Kṛṣṇa, and I ask You to dispel it completely. But for Yourself, no one is to be found who can destroy this doubt.



कृष्ण भूत, वर्तमान तथा भविष्य के जानने वाले हैं। भगवद्गीता के प्रारम्भ में भगवान् ने कहा है कि सारे जीव व्यष्टि रूप में भूतकाल में विद्यमान थे, इस समय विद्यमान हैं और भवबन्धन से मुक्त होने पर भविष्य में भी व्यष्टि रूप में बने रहेंगे। इस प्रकार उन्होंने व्यष्टि जीव के भविष्य के विषयक प्रश्न का स्पष्टीकरण कर दिया है। अब अर्जुन असफल योगियों के भविष्य के विषय में जानना चाहता है। कोई न तो कृष्ण के समान है, न ही उनसे बड़ा। तथाकथित बड़े-बड़े ऋषि तथा दार्शनिक, जो प्रकृति की कृपा पर निर्भर हैं, निश्चय ही उनकी समता नहीं कर सकते। अतः समस्त सन्देहों का पूरा-पूरा उत्तर पाने के लिए कृष्ण का निर्णय अन्तिम तथा पूर्ण है क्योंकि वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य के ज्ञाता हैं, किन्तु उन्हें कोई भी नहीं जानता। कृष्ण तथा कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ही जान सकते हैं कि कौन क्या है।

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
हि कल्याणकृत्कर्षिच्छ्रुग्गतिं तात गच्छति ॥ 6.40 ॥

भगवान् ने कहा – हे पृथापुत्र ! कल्याण-कार्यों में निरत योगी का न तो इस लोक में और न परलोक में ही विनाश होता है । हे मिल ! भलाई करने वाला कभी बुरे से पराजित नहीं होता ।

The Blessed Lord said: Son of Prithā, a transcendentalist engaged in auspicious activities does not meet with destruction either in this world or in the spiritual world; one who does good, My friend, is never overcome by evil.



श्रीमद्भागवत में (१.५.१७) श्री नारद मुनि व्यासदेव को इस प्रकार उपदेश देते हैं -

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाभ्युजं हरेर्भजन्नपक्षोऽथ पतेत्ततो यदि ।

यत्र कु वाभद्रमभूदमुष्य किं को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥

“यदि कोई समस्त भौतिक आशाओं को त्याग कर भगवान् की शरण में जाता है तो इसमें न तो कोई क्षति होती है और न पतन । दूसरी ओर अभक्त जन अपने-अपने व्यवसाओं में लगे रह सकते हैं फिर भी कुछ प्राप्त नहीं कर पाते ।” भौतिक लाभ के लिए अनेक शास्त्रीय तथा लौकिक कार्य हैं । जीवन में आध्यात्मिक उन्नति अर्थात् कृष्णभावनामृत के लिए योगी को समस्त भौतिक कार्यकलापों का परित्याग करना होता है । कोई यह तर्क कर सकता है कि यदि कृष्णभावनामृत पूर्ण हो जाय तो इससे सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त हो सकती है, किन्तु यदि यह सिद्धि प्राप्त न हो पाई तो भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से मनुष्य को क्षति पहुँचती है । शास्त्रों का आदेश है कि यदि कोई स्वधर्म का आचरण नहीं करता तो उसे पापफल भोगना पड़ता है, अतः जो दिव्य कार्यों को ठीक से नहीं कर पाता उसे फल भोगना होता है । भागवत पुराण आश्वस्त करता है कि असफल योगी को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है । भले ही उसे ठीक से स्वधर्माचरण न करने का फल भोगना पड़े तो भी वह घाटे में नहीं रहता क्योंकि शुभ कृष्णभावनामृत कभी विस्मृत नहीं होता । जो इस प्रकार में लगा रहता है वह अगले जन्म में निम्नयोनी में भी जन्म लेकर पहले की भाँति भक्ति करता है । दूसरी ओर, जो केवल नियत कार्यों को दृढ़तापूर्वक करता है, किन्तु यदि उसमें कृष्णभावनामृत का अभाव है तो आवश्यक नहीं कि उसे शुभ फल प्राप्त हो ।

इस श्लोक का तात्पर्य इस प्रकार है – मानवता के दो विभाग किये जा सकते हैं – नियमित तथा अनियमित | जो लोग अगले जन्म या मुक्ति के ज्ञान के बिना पाश्विक इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं वे अनियमित विभाग में आते हैं | जो लोग शास्त्रों में वर्णित कर्तव्य के सिद्धान्तों का पालन करते हैं वे नियमित विभाग में वर्गीकृत होते हैं | अनियमित विभाग के संस्कृत तथा असंस्कृत, शिक्षित तथा अशिक्षित, बली तथा निर्बल लोग पाश्विक वृत्तियों से पूर्ण होते हैं | उनके कार्य कभी भी कल्याणकारी नहीं होते क्योंकि वेपशुओं की भाँति आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन का भोग करते हुए इस संसार में निरन्तर रहते हैं, जो सदा ही दुखमय है | किन्तु जो लोग शास्त्रीय आदेशों के अनुसार संयमित रहते हैं और इस प्रकार क्रमशः कृष्णभावनामृत को प्राप्त होते हैं, वे निश्चित रूप से जीवन में उन्नति करते हैं | कल्याण-मार्ग के अनुयायिओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – (१) भौतिक सम्पन्नता का उपभोग करने वाले शास्त्रीय विधि-विधानों के अनुयायी, (२) इस संसार से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्नशील लोग तथा (३) कृष्णभावनामृत के भक्त | प्रथम वर्ग के अनुयायियों को पुनः दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है – सकामकर्मी तथा इन्द्रियतृप्ति की इच्छा न करने वाले | सकामकर्मी जीवन के उच्चतर स्तर तक उठ सकते हैं – यहाँ तक कि स्वर्गलोक को जा सकते हैं तो भी इस संसार से मुक्त न होने के कारण वे सही ढंग से शुभ मार्ग का अनुगमन नहीं करते | शुभ कर्म तो वे हैं जिनसे मुक्ति प्राप्त हो | कोई भी ऐसा कार्य जो परम आत्म-साक्षात्कार या देहात्मबुद्धि से मुक्ति की ओर उन्मुख नहीं होता वह रंचमाल भी कल्याणप्रद नहीं होता | कृष्णभावनामृत सम्बन्धी कार्य ही एकमाल शुभ कार्य है और जो कृष्णभावनामृत के मार्ग पर प्रगति करने के उद्देश्य से स्वेच्छा से समस्त शारीरिक असुविधाओं को स्वीकार करता है वही घोर तपस्या के द्वारा पूर्णयोगी कहलाता है | चूंकि अष्टांगयोग पद्धति कृष्णभावनामृत की चरम अनुभूति के लिए होती है, अतः यह पद्धति भी कल्याणप्रद है, अतः जो कोई इस दिशा में यथाशक्य प्रयास करता है उसे कभी अपने पतन के प्रति भयभीत नहीं होना चाहिए |

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
श्रुचीनां श्रीमतां ग्रेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ 6.41 ॥



असफल योगी पवित्रात्माओं के लोकों में अनेकानेक वर्षों तक भोग करने के बाद या तो सदाचारी पुरुषों के परिवार में या कि धनवानों के कुल में जन्म लेता है ।

The unsuccessful yogī, after many, many years of enjoyment on the planets of the pious living entities, is born into a family of righteous people, or into a family of rich aristocracy.



असफल योगियों की दो श्रेणियाँ हैं – एक वे जो बहुत थोड़ी उन्नति के बाद ही भ्रष्ट होते हैं; दुसरे वे जो दीर्घकाल तक योगाभ्यास के बाद भ्रष्ट होते हैं। जो योगी अल्पकालिक अभ्यास के बाद भ्रष्ट होता है वह स्वर्गलोक को जाता है जहाँ केवल पुण्यात्माओं को प्रविष्ट होने दिया जाता है। वहाँ पर दीर्घकाल तक रहने के बाद उसे पुनः इस लोक में भेजा जाता है जिससे वह किसी सदाचारी ब्राह्मण वैष्णव के कुल में या धनवान वणिक के कुल में जन्म ले सके। योगाभ्यास का वास्तविक उद्देश्य कृष्णभावनामृत की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करना है, जैसा कि इस अध्याय के अन्तिम श्लोक में बताया गया है, किन्तु जो इतने अध्यवसायी नहीं होते और जो भौतिक प्रलोभनों के कारण असफल हो जाते हैं, उन्हें अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति करने की अनुमति दी जाती है। तत्पश्चात् उन्हें सदाचारी या धनवान परिवारों में सम्पन्न जीवन बिताने का अवसर प्रदान किया जाता है। ऐसे परिवारों में जन्म लेने वाले इन सुविधाओं का लाभ उठाते हुए अपने आपको पूर्ण कृष्णभावनामृत तक ऊपर ले जाते हैं।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्विदुर्लभतरं लोके जन्म यदीहशम् ॥ 6.42॥



अथवा (यदि दीर्घकाल तक योग करने के बाद असफल रहे तो) वह
ऐसे योगियों के कुल में जन्म लेता है जो अति बुद्धिमान हैं । निश्चय ही
इस संसार में ऐसा जन्म दुर्लभ है ।

Or he takes his birth in a family of transcendentalists who
are surely great in wisdom. Verily, such a birth is rare in
this world.



यहाँ पर योगियों के बुद्धिमान कुल में जन्म लेने की प्रशंसा की गई है क्योंकि ऐसे कुल में उत्पन्न बालक को प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक प्रोत्साहन प्राप्त होता है। विशेषतया आचार्यों या गोस्वामियों के कुल में ऐसी परिस्थिति है। ऐसे कुल अत्यन्त विद्वान होते हैं और परम्परा तथा प्रशिक्षण के कारण श्रद्धावान होते हैं। इस प्रकार वे गुरु बनते हैं। भारत में ऐसे अनेक आचार्य कुल हैं, किन्तु अब वे अपर्याप्त विद्या तथा प्रशिक्षण के कारण पतनशील हो चुके हैं। भगवत्कृपा से अभी भी कुछ ऐसे परिवार हैं जिनके पीढ़ी-दर-पीढ़ी योगियों को प्रश्रय मिलता है। ऐसे परिवारों में जन्म लेना सचमुच ही अत्यन्त सौभाग्य की बात है। सौभाग्यवश हमारे गुरु विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज को तथा स्वयं हमें भी ऐसे परिवारों में जन्म लेने का अवसर प्राप्त हुआ। हम दोनों को बचपन से ही भगवद्भक्ति करने का प्रशिक्षण दिया गया। बाद में दिव्य व्यवस्था के अनुसार हमारी भेंट हुई।

तत तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ 6.43 ॥



हे कुरुनन्दन ! ऐसा जन्म पाकर वह अपने पूर्वजन्म की दैवी चेतना को पुनः प्राप्त करता है और पूर्ण सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से वह आगे उन्नति करने का प्रयास करता है ।

On taking such a birth, he again revives the divine consciousness of his previous life, and he tries to make further progress in order to achieve complete success, O son of Kuru.



राजा भरत, जिन्हें तीसरे जन्म में उत्तम ब्राह्मण कुल में जन्म मिला, पूर्व दिव्यचेतना की पुनःप्राप्ति के लिए उत्तम जन्म के उदाहरणस्वरूप हैं। भरत विश्व भर के सम्राट थे और तभी से यह लोक देवताओं के बीच भारतवर्ष के नाम से विख्यात है। पहले यह इलावृतवर्ष के नाम से ज्ञात था। भरत ने अल्पायु में ही आध्यात्मिक सिद्धि के लिए संन्यास ग्रहण कर लिया था, किन्तु वे सफल नहीं हो सके। अगले जन्म में उन्हें उत्तम ब्राह्मण कुल में जन्म लेना पड़ा और वे जड़ भरत कहलाये क्योंकि वे एकान्त वास करते थे तथा किसी से बोलते न थे। बाद में राजा रहूगण ने इन्हें महानतम योगी के रूप में पाया। उनके जीवन से यह पता चलता है कि दिव्य प्रयास अथवा योगाभ्यास कभी व्यर्थ नहीं जाता। भगवत्कृपा से योगी को कृष्णभावनामृत में पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने के बारम्बार सुयोग प्राप्त होते रहते हैं।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ 6.44 ॥



अपने पूर्वजन्म की दैवी चेतना से वह न चाहते हुए भी स्वतः योग के नियमों की ओर आकर्षित होता है । ऐसा जिज्ञासु योगी शास्त्रों के अनुष्ठानों से परे स्थित होता है ।

By virtue of the divine consciousness of his previous life, he automatically becomes attracted to the yogic principles—even without seeking them. Such an inquisitive transcendentalist, striving for yoga, stands always above the ritualistic principles of the scriptures.



उन्नत योगीजन शास्त्रों के अनुष्ठानों के प्रति अधिक आकृष्ट नहीं होते, किन्तु योग-नियमों के प्रति स्वतः आकृष्ट होते हैं, जिनके द्वारा वे कृष्णभावनामृत में आरूढ़ हो सकते हैं। श्रीमद्भागवत में (३.३३.७) उन्नत योगियों द्वारा वैदिक अनुष्ठानों के प्रति अवहेलना की व्याख्या इस प्रकार की गई है – अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् | तेपुस्तपस्ते जुहुवः ससुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ “हे भगवान्! जो लोग आपके पवित्र नाम का जप करते हैं, वे चाण्डालों के परिवारों में जन्म लेकर भी अध्यात्मिक जीवन में अत्यधिक प्रगत होते हैं। ऐसे जपकर्ता निस्सन्देह सभी प्रकार के तप और यज्ञ कर चुके होते हैं, तीर्थस्थानों में स्नान कर चुके होते हैं और समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर चुके होते हैं।” इसका सुप्रसिद्ध उदाहरण भगवान् चैतन्य ने प्रस्तुत किया, जिन्होंने ठाकुर हरिदास को अपने परमप्रिय शिष्य के रूप में स्वीकार किया। यद्यपि हरिदास का जन्म एक मुसलमान परिवार में हुआ था, किन्तु भगवान् चैतन्य ने उन्हें नामाचार्य की पदवी प्रदान की क्योंकि वे प्रतिदिन नियमपूर्वक तीन लाख भगवान् के पवित्र नामों- हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम हरे हरे – का जप करते थे। और चूँकि वे निरन्तर भगवान् के पवित्र नाम का जप करते रहते थे, अतः यह समझा जाता है कि पूर्वजन्म में उन्होंने शब्दब्रह्म नामक वेदवर्णित कर्मकाण्डों को पूरा किया होगा। अतएव जब तक कोई पवित्र नहीं होता तब तक कृष्णभावनामृत के नियमों को ग्रहण नहीं करता या भगवान् के पवित्र नाम हरे कृष्ण का जप नहीं कर सकता।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ 6.45 ॥



और जब योगी कल्मष से शुद्ध होकर सच्ची निष्ठा से आगे प्रगति करने का प्रयास करता है, तो अन्ततोगत्वा अनेकानेक जन्मों के अभ्यास के पश्चात् सिद्धि-लाभ करके वह परम गन्तव्य को प्राप्त करता है ।

But when the yogī engages himself with sincere endeavor in making further progress, being washed of all contaminations, then ultimately, after many, many births of practice, he attains the supreme goal.



सदाचारी, धनवान या पविल कुल में उत्पन्न पुरुष योगाभ्यास के अनुकूल परिस्थिति से सचेष्ट हो जाता है। अतः वह दृढ़ संकल्प करके अपने अधूरे कार्य को करने में लग जाता है और इस प्रकार वह अपने को समस्त भौतिक कल्मण से शुद्ध कर लेता है। समस्त कल्मण से मुक्त होने पर उसे परम सिद्धि-कृष्णभावनामृत – प्राप्त होती है। कृष्णभावनामृत ही समस्त कल्मण से मुक्त होने की पूर्ण अवस्था है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता में (७.२८) हुई है –

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

“अनेक जन्मों तक पुण्यकर्म करने से जब कोई समस्त कल्मण तथा मोहमय द्वन्द्वों से पूर्णतया मुक्त हो जाता है, तभी वह भगवान् की दिव्य प्रेमभक्ति में लग पता है।”

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ 6.46 ॥



योगी पुरुष तपस्वी से, ज्ञानी से तथा सकामकर्मी से बढ़कर होता है ।
अतः हे अर्जुन ! तुम सभी प्रकार से योगी बनो ।

A yogī is greater than the ascetic, greater than the empiricist and greater than the fruitive worker. Therefore, O Arjuna, in all circumstances, be a yogī.



जब हम योग का नाम लेते हैं तो हम अपनी चेतना को परमसत्य के साथ जोड़ने की बात करते हैं | विविध अभ्यासकर्ता इस पद्धति को ग्रहण की गई विशेष विधि के अनुसार विभिन्न नामों से पुकारते हैं | जब यह योगपद्धति सकामकर्मों से मुख्यतः सम्बन्धित होती है तो कर्मयोग कहलाती है, जब यह चिन्तन से सम्बन्धित होती है तो ज्ञानयोग कहलाती है और जब यह भगवान् की भक्ति से सम्बन्धित होती है तो भक्तियोग कहलाती है | भक्तियोग या कृष्णभावनामृत समस्त योगों की परमसिद्धि है, जैसा कि अगले श्लोक में बताया जायेगा | भगवान् ने यहाँ पर योग की श्रेष्ठता की पुष्टि की है, किन्तु उन्होंने इसका उल्लेख नहीं किया कि यह भक्तियोग से श्रेष्ठ है | भक्तियोग पूर्ण आत्मज्ञान है, अतः इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है | आत्मज्ञान के बिना तपस्या अपूर्ण है | परमेश्वर के प्रति समर्पित हुए बिना ज्ञानयोग भी अपूर्ण है | सकामकर्म भी कृष्णभावनामृत के बिना समय का अपव्यय है | अतः यहाँ पर योग का सर्वाधिक प्रशंसित रूप भक्तियोग है और इसकी अधिक व्याख्या अगले श्लोक में की गई है |

योगिनामपि सर्वेषां मद्भूतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ 6.47 ॥



और समस्त योगियों में से जो योगी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मेरे परायण है,
अपने अन्तःकरण में मेरे विषय में सोचता है और मेरी दिव्य
प्रेमाभक्ति करता है वह योग में मुझसे परम अन्तरंग रूप में युक्त
रहता है और सबों में सर्वोच्च है । यही मेरा मत है ।

And of all yogīs, he who always abides in Me with great
faith, worshiping Me in transcendental loving service, is
most intimately united with Me in yoga and is the highest
of all.



यहाँ पर भजते शब्द महत्वपूर्ण है | भजतेभज् धातु से बना है जिसका अर्थ है-सेवा करना | अंग्रेजी शब्द वर्शिप (पूजन) से यह भाव व्यक्त नहीं होता, क्योंकि इससे पूजा करना, सम्मान दिखाना तथा योग्य का सम्मान करना सूचित होता है | किन्तु प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक सेवा तो श्रीभगवान् के निमित्त है | किसी सम्माननीय व्यक्ति या देवता की पूजा न करने वाले को अशिष्ट कहा जा सकता है, किन्तु भगवान् की सेवा न करने वाले की तो पूरी तरह भर्त्सना की जाती है | प्रत्येक जीव भगवान् का अंशस्वरूप है और इस तरह प्रत्येक जीव को अपने स्वभाव के अनुसार भगवान् की सेवा करनी चाहिए | ऐसा न करने से वह नीचे गिर जाता है | भागवत पुराण में (११.५.३) इसकी पुष्टि इस प्रकार हुई है – य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ।

न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ “जो मनुष्य अपने जीवनदाता आद्य भगवान् की सेवा नहीं करता और अपने कर्तव्य में शिथिलता बरतता है, वह निश्चित रूप से अपनी स्वाभाविक स्थिति से नीचे गिरता है ।” भागवत पुराण के इस श्लोक में भजन्ति शब्द व्यवहृत हुआ है | भजन्ति शब्द का प्रयोग परमेश्वर के लिए ही प्रयुक्त किया जा सकता है, जबकि वर्शिप (पूजन) का प्रयोग देवताओं या अन्य किसी सामान्य जीव के लिए किया जाता है | इस श्लोक में प्रयुक्त अवजानन्ति शब्द भगवद्गीता में भी पाया जाता है -अवजानन्ति मां मूढाः- केवल मुख्य तथा धूर्त भगवान् कृष्ण का उपहास करते हैं | ऐसे मुख्य भगवद्वक्ति की प्रवृत्ति न होने पर भी भगवद्गीता का भाष्य कर बैठते हैं | फलतः वे भजन्ति तथा वर्शिप (पूजन) शब्दों के अन्तर को नहीं समझ पाते ।

भक्तियोग समस्त योगों की परिणति है। अन्य योग तो भक्तियोग में भक्ति तक पहुँचने के साधन मात्र हैं। योग का वास्तविक अर्थ भक्तियोग है – अन्य सारे योग भक्तियोग रूपी गन्तव्य की दिशा में अग्रसर होते हैं। कर्मयोग से लेकर भक्तियोग तक का लम्बा रास्ता आत्म-साक्षात्कार तक जाता है। निष्काम कर्मयोग इस रास्ते (मार्ग) का आरम्भ है। जब कर्मयोग में ज्ञान तथा वैराग्य की वृद्धि होती है तो यह अवस्था ज्ञानयोग कहलाती है। जब ज्ञानयोग में अनेक भौतिक विधियों से परमात्मा के ध्यान में वृद्धि होने लगती है और मन उन पर लगा रहता है तो इसे अष्टांगयोग कहते हैं। इस अष्टांगयोग को पार करने पर जब मनुष्य श्रीभगवान् कृष्ण के निकट पहुँचता है तो वह भक्तियोग कहलाता है। यथार्थ में भक्तियोग ही चरम लक्ष्य है, किन्तु भक्तियोग का सूक्ष्म विश्लेषण करने के लिए अन्य योगों को समझना होता है। अतः जो योगी प्रगतिशील होता है वह शाश्वत कल्याण के सही मार्ग पर रहता है। जो किसी एक बिन्दु पर दृढ़ रहता है और आगे प्रगति नहीं करता वह कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, ध्यानयोगी, राजयोगी, हठयोगी आदि नामों से पुकारा जाता है। यदि कोई इतना भाग्यशाली होता है कि भक्तियोग को प्राप्त हो सके तो यह समझना चाहिए कि उसने समस्त योगों को पार कर लिया है। अतः कृष्णभावनाभावित होना योग की सर्वोच्च अवस्था है, ठीक उसी तरह जैसे कि हम यह कहते हैं कि विश्व भर के पर्वतों में हिमालय सबसे ऊँचा है, जिसकी सर्वोच्च छोटी एवरेस्ट है। कोई विरला भाग्यशाली ही वैदिक विधान के अनुसार भक्तियोग के पथ को स्वीकार करके कृष्णभावनाभावित हो पाता है। आदर्श योगी श्यामसुन्दर कृष्ण पर अपना ध्यान एकाग्र करता है, जो बादल के समान सुन्दर रंग वाले हैं, जिनका ..

जिनका कमल सदृश मुख सूर्य के समान तेजवान है, जिनका वस्त्र रत्नों से प्रभापूर्ण है और जिनका शरीर फूलों की माला से सुशोभित है। उनके अंगों को प्रदीप्त करने वाली उनकी ज्योति ब्रह्मज्योति कहलाती है। वे राम, नृसिंह, वराह तथा श्रीभगवान् कृष्ण जैसे विभिन्न रूपों में अवतरित होते हैं। वे सामान्य व्यक्ति की भाँति, माता यशोदा में पुत्र रूप में जन्म ग्रहण करते हैं और कृष्ण, गोविन्द, तथा वासुदेव के नाम से जाने जाते हैं। वे पूर्ण बालक, पूर्ण पति, पूर्ण सखा तथा पूर्ण स्वामी हैं, और वे समस्त ऐश्वर्यों तथा दिव्य गुणों से ओतप्रोत हैं। जो श्रीभगवान् के इन गुणों से पूर्णतया अभिन्न रहता है वह सर्वोच्च योगी कहलाता है। योगी की यह सर्वोच्च दशा केवल भक्तियोग से ही प्राप्त की जा सकती है जिसकी पुष्टि वैदिक साहित्य से होती है (श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.२३) – यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ | तस्यते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ||

“जिन महात्माओं के हृदय में श्रीभगवान् तथा गुरु में परम श्रद्धा होती है उनमें वैदिक ज्ञान का सम्पूर्ण तात्पर्य स्वतः प्रकाशित हो जाता है।” भक्तिरस्य भजनं तदिहामुलोपाधिनैरास्येनामुष्मिन् मनःकल्पनमेतदेव नैष्कर्म्यम् – भक्ति का अर्थ है, भगवान् की सेवा जो इस जीवन में या अगले जीवन में भौतिक लाभ की इच्छा से रहित होती है। ऐसी प्रवृत्तियों से मुक्त होकर मनुष्य को अपना मन परमेश्वर में लीन करना चाहिये। नैष्कर्म्य का यही प्रयोजन है (गोपाल-तापनी उपनिषद् १.५)। ये सभी कुछ ऐसे साधन हैं जिनसे योग की परम संसिद्धिमयी अवस्था भक्ति या कृष्णभावनामृत को सम्पन्न किया जा सकता है।

हरे कृष्ण

॥ इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय
“ध्यानयोग” का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

निताई गौर हरी बोल